मासिक रायबरेली

अरफ़ात किरण

नई जाहिलियत की संगीनी

"आज हम फिर एक बहुत बड़ी जाहिलियत का सामना कर रहे हैं। यह जाहिलियत अरब की जाहिलियत से भी ज़्यादा अंधेरी, ज़्यादा गहरी और उससे ज़्यादा ख़तरनाक है। इस जाहिलियत का सरचश्मा (मूलतत्व) अल्लाह की हाकिमियत से बेज़ारी है जिसके लिए आज के बड़े-बड़े अविष्कार और आश्चर्यजनक भौतिक खोज में हरगिज़ कोई जवाज़ नहीं है। यह जाहिलियत ख़ुदा की सिफ़त-ए-ख़ल्क़-ओ-इब्दा (सृष्टि एवं उत्पत्ति) को इन्सानों से जोड़ती है। इसलिए अगर पुरानी जाहिलियत बुतपरस्ती (मूर्तिपूजा) की दावत देती थी तो नये ज़माने की जाहिलियत में एक इन्सान दूसरे इन्सान को ख़ुदा मानता है और उसके सामने सर झुकाता है। पुरानी जाहिलियत में फ़िल्ला-ओ-फ़साद, पक्षपात, जुल्म-ओ-जोर और क़त्ल-ओ-ख़ूंरेज़ी की जितनी ख़ासियत पाई जाती थीं, नई जाहिलियत में उससे कहीं बढ़कर यह चीज़ें मौजूद हैं। सच है कि मौजूदा जाहिली ज़िन्दगी में बुत परस्ती इस तरह राइज नहीं है लेकिन यह हक़ीक़त भी नज़रअंदाज़ नहीं की जा सकती कि इस ज़िन्दगी में ख़ुदा और ख़ालिक़ का तसव्वुर एकदम ख़त्म हो चुका है और वह नजासतों और नापाकियों में इस तरह पड़ चुकी है कि गुनाह और शिर्क की हर बदतरीन शक्ल उसकी नज़र में दिलफ़रेब और देखने योग्य है और वह उसका बढ़कर इस्तिक़बाल करती है।"
(इस्लाम और मग़्रिब: 16)

हज़रत मौलाना डॉक्टर सईदुर्रहमान आज़मी नदवी (रह०)

मर्कज़ुल इमाम अबिल हसन अल नदवी
दारे अरफ़ात, तकिया कलां, रायबरेली

यह रोने की जगह है तमाशा नहीं है

"रसूलुल्लाह (स0अ0व0) ने फ़रमाया था कि तुम पर क़ौमें इस तरह इकट्ठा हो जाएँगी जिस तरह खाने वाले लगन पर, लोगों ने पूछाः या रसूलुल्लाह! हमारी तादाद की कमी की वजह से? फ़रमायाः नहीं, तुम बहुत होगे लेकिन तुम्हारा रौब उनके दिलों से उठ जाएगा, तुम सैलाब के कूड़े–करकट की तरह हो जाओगे। यह तो अल्लाह देखता है लेकिन हम जो कुछ देखते हैं वह यह है किः

(१) इनमें से बीसियों वह लोग हैं जो कलमा का मतलब नहीं जानते और शिर्क व तौहीद व रिसालत के मुतअल्लिक़ सिरे से उनका कोई अकीदा ही नहीं। ऐसे भी हैं जिनको कलमा भी याद नहीं, ऐसे कसरत से हैं जिनके दिल में तौहीद पूरी तरह से नहीं उतरी, न शिर्क से उनको कोई नफ़रत है। ऐसे भी कुछ कम नहीं कि कुरआन मजीद के मुताबिक़ खुले शिर्क व बुतपरस्ती में मुब्तिला हैं।

(२) ऐसे सैकड़ों हैं जो इस्लाम को बिल्कुल नहीं समझते, न कभी समझने की कोशिश करते हैं। उनको इस्लाम या इस्लामी नाम, घर के सामान और रिवायात के साथ बाप–दादा के तर्के में मिला है। उसके मुतअल्लिक़ उनको और कोई इल्म नहीं, वह नहीं जानते अल्लाह उनसे क्या चाहता है? इस्लाम के क्या हुकूक़ और शराइत हैं? इस्लाम ने उनकी ज़िंदगी में कोई दुरुस्ती या फ़र्क़ किया या नहीं?

(३) ऐसे बहुत हैं जिनकी ज़िंदगी और मौत किसी तरह इस्लामी नहीं और उनके रस्म व रिवाज, शादी–ग़मी, तमद्दुन व मुआशरत, वज़ा–क़ता, नशिस्त व बरख़ास्त, मामलात व ताल्लुक़ात किसी से भी कोई उनको मुसलमान नहीं समझ सकता।

(४) ऐसे अक्सर हैं जो किसी माने में इस्लाम और रसूलुल्लाह (स0अ0व0) की उम्मत के लिए मुफ़ीद नहीं और उनका होना न होना बराबर है।

(५) ऐसे बहुत हैं कि उनसे इस्लाम के नाम और उसकी शोहरत व इज़्ज़त व कामयाबी को नुक़सान पहुँच रहा है, उनको देखकर और उनके साथ रहकर लोग इस्लाम से बदअक़ीदा और कभी मुर्तद हो जाते हैं।

(६) बहुत से ऐसे हैं जिनको इस्लाम के ख़िलाफ़ और मुसलमानों को नुक़सान पहुँचाने के लिए इस्लामी शआइर और मक़ामात–ए–मुक़द्दसा की बेहुरमती के लिए मुफ़्त और बहुत थोड़ी क़ीमत पर हर वक़्त इस्तेमाल किया जा सकता है।

(७) ऐसे बहुत ज़्यादा हैं जिनको इस्लाम के साथ कोई दिलचस्पी और मुसलमानों के साथ कोई हमदर्दी नहीं, उनको उनकी मुश्किलात व ज़रूरतों का कोई इल्म नहीं, वह यह भी नहीं जानते कि मुसलमान कहाँ–कहाँ बसते हैं और वह उनके लिए क्या कर सकते हैं?

(८) ऐसे भी हैं जो मुसलमानों को हक़ीर समझते हैं, मुसलमान कहलाने से शर्माते हैं और मज़हब पर हँसते हैं।

(९) ऐसे बहुत से हैं जो अपनी और मुसलमानों की हालत पर क़ानेअ हैं, उन्हें इस्लाम और मुसलमानों की इज़्ज़त और तरक़्क़ी के देखने का कहीं कोई शौक़ और अरमान नहीं होता और न ज़िल्लत से कोई तकलीफ़ होती है, उनको यह चीज़ कोई ग़ैर–मामूली नहीं मालूम होती। बहुत से ऐसे हैं कि खुद अपनी निगाह में उनकी कोई इज़्ज़त नहीं, वह अपनी क़ीमत नहीं जानते, अपनी तारीख़, अपने माज़ी, अपने असलाफ़ और बुज़ुर्गों से नावाक़िफ़ हैं। वह किसी वक़्त उन पर फ़ख़्र और अपने इस्लाम पर शुक्र नहीं करते और उनको उनकी पैरवी का शौक़ है और न खोई चीज़ों का अफ़सोस, उनके सामने इस्लाम का कोई असली नमूना और उसका कोई बुलंद नख़ील नहीं, इसलिए वह सुस्त, दिलशिकस्ता और मायूस हैं।

(१०) अक्सर ऐसे हैं जो महज़ देखा–देखी और रस्मी मुसलमान हैं, इसलिए न उनको इस्लाम का इल्म है न उस पर फ़ख़्र व शुक्र है, न इसमें उनको कोई लुत्फ़ है और न उनके अख़्लाक़ व आमाल पर उसका नूर व बरकत व असर है।

बताइए कि ऐसे मजमे को देखकर क्या खुशी हो, हक़ीक़त में आजकल जहाँ मुसलमान जमा हो जाएँ वहाँ अक़ाइद व मज़हब का अजायब–ख़ाना, दीनी और रूहानी अमराज़ का बीमार–ख़ाना, उयूब का बाज़ार लग जाता है मगर– "यह रोने की जा है तमाशा नहीं है।" (इस्लाहियातः ११९–१२२)

मुफ़क्किर-ए-इस्लाम हज़रत मौलाना सैय्यद अबुल हसन अली हसनी नदवी (रह०)

بِسۡمِ اللّٰہِ الرَّحۡمٰنِ الرَّحِیۡمِ

मासिक

अरफ़ात किरण

रायबरेली

अंक:11 नवम्बर २०२९ ई० वर्ष:18

सम्पादकीय मण्डल

बिलाल अब्दुल हयि हसनी नदवी

मुफ़्ती राशिद हुसैन नदवी

अब्दुस्सुब्हान नाख़ुदा नदवी

मुहम्मद हसन नदवी

सह सम्पादक

मुहम्मद मक्की हसनी नदवी

मुहम्मद अमीन हसनी नदवी

मुहम्मद अरमुग़ान बदायूंनी नदवी

अनुवादक

मुहम्मद सैफ़

फ़ित्नों के दौर में हिदायत-ए-नबवी

अल्लाह के रसूल (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) ने फ़रमाया:

"बिला शुब्हा तुममें से जो शख़्स मेरे बाद ज़िन्दा रहेगा वह बहुत से इख़्तिलाफ़ात देखेगा; बस तुम पर लाज़िम है कि मेरी सुन्नत और हिदायत याफ़्ता ख़ुल्फ़ा-ए-राशिदीन की सुन्नत को मज़बूती से थामे रखो और उसे अपनी दाढ़ों से मज़बूती के साथ पकड़ लो।"

सुनन अबी दाऊदः 4607

E-Mail: markazulimam@gmail.com www.abulhasanalinadwi.org

मर्कज़ुल इमाम अबिल हसन अल-नदवी दारे अरफ़ात, तकिया कलां रायबरेली,यू0पी0.229001

मो० हसन नदवी ने एस० ए० आफसेट प्रिन्टर्स, मस्जिद के पीछे, फाटक अब्दुल्ला खॉ, सब्ज़ी मण्डी, स्टेशन रोड रायबरेली से छपवाकर आफिस अरफ़ात किरण,मर्कज़ुल इमाम अबिल हसन अल-नदवी, दारे अरफ़ात, तकिया कलां रायबरेली से प्रकाशित किया।

Markazul Imam Abil Hasan Al-Nadwi Samiti (Punjab National Bank) A/c No. 6127002100000339 (IFSC: PUNB0612700)



कीमिया तासीर है ज़र्रा-ए-नाचीज़ दिल

मौलाना मुफ़्ती मोहम्मद तक़ी उस्मानी

मुझसे हटकर देखिये, मुझको भुलाकर देखिये
मेरी उल्फ़त का फुसूँ कुछ दूर जाकर देखिए

आईना के झूट पर हरगिज़ न कीजिए एतबार
अपने जल्वों को मिरी ख़ल्वत में आकर देखिए

कीमिया तासीर है ये ज़र्रा-ए-नाचीज़ दिल
गर किसी की याद में इस को मिटा कर देखिए

मर्ग-ए-कैफ़-ए-इश्क़ है हंगामा-ए-रोज़-ए-विसाल
दर्द-ए-उल्फ़त का मज़ा फुरक़त में जाकर देखिए

बस पस-ए-मिज़्गाँ ही रक्खें आतिश-ए-सैयाल-ए-ग़म
उम्र भर की पूँजियों को क्यों बहा कर देखिए

कितने ग़ुंचे मुज़्तरिब हैं दिल में खिलने के लिए
अपने हाथों से ज़रा नश्तर लगा कर देखिए

हुस्न के हाथों में पहले बे-नवा बन जाइए
इश्क़ तेदार-ए-इश्क़ का फिर लुत्फ़ उठा कर देखिए

ढूँढिए फिर बहर-ए-ज़ुल्मत में मुरादों के गहर
कश्तियाँ पहले सर-ए-साहिल जला कर देखिए

ख़ुश्क पत्थर की रगों में मुंतज़िर सैराबियाँ
तिश्नगी की आग सीने में लगा कर देखिए

ग़म के दाग़ों से न डरिए, इन से फूटेगी बहार
इन गुलों को ताक़-ए-हस्ती पर सजा कर देखिए

गर्मी-ए-गुफ़्तार से जब कुछ न हासिल हो सके
बे-ज़बानी की ज़बाँ भी आज़मा कर देखिए

चाहिए आसी अगर लुत्फ़-ए-हयात-ए-जावेदाँ
अपनी हस्ती उन की चौखट पर फ़ना कर देखिए

इस अंक में:

मुहम्मद-ए-अरबी से है आलम-ए-अरबी.....3

बिलाल अब्दुल हयि हसनी नदवी

तक़वा क्या है?.....4

बिलाल अब्दुल हयि हसनी नदवी

तस्वीरकशी में बढ़ती बेएहतियातीं.....6

मौलाना ख़ालिद सैफुल्लाह रहमानी

नफ़क़ा के मसाइल.....9

मुफ़्ती राशिद हुसैन नदवी

अहल-ए-दावत से कुछ अहम गुज़ारिशें.....11

मौलाना अब्दुस्सुब्हान नाख़ुदा नदवी

औलाद की तालीम व तरबियत और वालिदैन की ज़िम्मेदारी..13

अमीन हसनी नदवी

क़ल्ब इन्सानी वजूद का सुल्तान.....15

मौलाना मुहम्मद सलमान बिजनौरी नदवी

इल्हाद का तूफ़ान – असबाब व इलाज.....17

मोहम्मद नज्मुद्दीन नदवी

अम्बिया (अलैहिस्सलाम) की मुख़ालिफ़त की एक बड़ी वजह.....19

अबुल हसन अली हसनी नदवी



मुहम्मद-ए-अरबी से है आलम-ए-अरबी

बिलाल अब्दुल हयि हसनी नदवी

हिजाज़–ए–मुक़द्दस आलम–ए–इस्लाम का दिल है। वह मुसलमानों का काबा है। हर मुसलमान वहाँ से जज़्बाती वाबस्तगी रखता है और क्यों न हो वहाँ मक्का है वहीं मदीना है, जहाँ का चप्पा–चप्पा चाहने वाले की आँख का सुरमा है। वहीं से दुनिया को दीन की दौलत मिली, इंसानियत की नेमत मिली, सच्ची ज़िंदगी का रास्ता मिला और आज भी मुसलमान वहाँ की पाक सरज़मीन को इसी नज़र से देखता है। सऊदी हुकूमत से पहले वहाँ की बदअमनी और बे–एत्मीनानी के हालात को हर मुअर्रिख़ जानता है। इसमें कोई शुब्हा नहीं हुकूमत–ए–सऊदिया के आने के बाद हालात बदले, अमन व अमान क़ायम हुआ, बिदआत व ख़ुराफ़ात का ख़ात्मा हुआ, शरीअत को दस्तूर–ए–ममलिकत क़रार दिया गया लेकिन तेल के निकलने के बाद दौलत की फ़रावानी ने एक तरफ़ राहत व आराम का सामान किया तो दूसरी तरफ़ ऐश व इशरत का मिज़ाज बनाया और फिर मग़रिबी तहज़ीब ने आहिस्ता–आहिस्ता बाल–ओ–पर निकालने शुरू किए और फिर इतनी तेज़ी के साथ उसका सैलाब आया कि अरबी लिबास में दिमाग़ मग़रिबी बन गए। उस वक़्त असहाब–ए–फ़िक्र व दावत ने कोशिशें शुरू कीं जिनमें मुफ़क्किर–ए–इस्लाम हज़रत मौलाना सैयद अबुल हसन अली नदवी (रह0) का नाम नुमायाँ है। अल्लाह तआला ने हज़रत मौलाना को बड़ा हस्सास और दर्दमंद दिल दिया था। अरबों से मौलाना को बड़ी गहरी वाबस्तगी थी और मौलाना उनको उसी बुलंद मक़ाम पर देखना चाहते थे जो अल्लाह ने उनको इस्लाम से वाबस्तगी की बुनियाद पर अता किया था। हिजाज़–ए–मुक़द्दस के सफ़रों का आग़ाज़ हुआ तो मौलाना ने वहाँ अपने दावती मिशन का भी आग़ाज़ किया और ख़ास तौर पर असहाब–ए–इक़्तिदार को मौलाना ने तवज्जोह दिलाई। मलिक सऊद से लेकर मलिक फ़हद तक मौलाना सबसे मिले, ख़ुतूत लिखे और उनको ख़तरों से आगाह किया। हज़रत मौलाना ने हर जगह यह बात कही कि अरबों का इम्तियाज़ दीन से वाबस्तगी में है, मौलाना ने बड़े जोश से उनको मुख़ातिब होते हुए फ़रमाया कि मुहम्मद अरबी (स0अ0व0) से पहले भी तुम कुछ न थे और अगर तुमने हुज़ूर (स0अ0व0) की ज़ात–ए–अक़्दस से बेवफ़ाई की तो तुम बे–हक़ीक़त हो जाओगे। तुम्हारा इम्तियाज़ ख़त्म हो जाएगा। हर अरब मुल्क में मौलाना ने यही सूर फूँका और उस वक़्त मौलाना की तवज्जोह–दिहानी का बड़ा असर पड़ा और हालात थम गए।

मलिक फ़ैसल मरहूम ख़ास तौर पर मौलाना के बड़े क़द्रदाँ और मौलाना के इख़्लास व ज़ोह्द और ख़ैरख़्वाही के बड़े मोअतरिफ़ थे और मौलाना की नसीहतों का उनकी ज़िंदगी पर बड़ा असर पड़ा लेकिन अमेरिका की गिरफ़्त बढ़ती चली गई। मलिक फ़ैसल मरहूम को शहीद करा दिया गया और आगे हुक्मरानों ने कुछ ज़्यादा ही एहतियात की पॉलिसी इख़्तियार की फिर भी कुछ क़द्रें बाक़ी रहीं। उलमा का एहतराम बाक़ी रहा, दीन की पासदारी होती रही, इसलिए कि कहने वाले बाक़ी थे, वह कहने वाले जो बड़े हकीम और हक़ीक़त शनास थे, जिनका काम सिर्फ़ नक़्द कर देना नहीं था। उनकी ज़बान अंबिया (अलैहिमुस्सलाम) की ज़बान की तर्जुमान थीः "और मैं तुम्हारा मोतबर ख़ैरख़्वाह हूँ।" उनकी ख़ैरख़्वाहाना बातचीत का बड़ा असर पड़ता था और दीन की कुछ न कुछ पासदारी भी बाक़ी थी।

आज के हालात इंतिहाई फ़िक्र–मंदी और दुआ के हैं। मौजूदा इक़्तिदार ने वह हदें भी पार कर दीं जिनका लिहाज़ अब तक क़ायम था। अहल–ए–दीन और अहल–ए–इक़्तिदार में दूरियाँ बढ़ती जा रही हैं जो बड़े ख़तरे की अलामत है। ज़रूरत इसकी थी कि बात दर्द व फ़िक्र के साथ पहुँचती, ख़ैरख़्वाहाना उस्लूब में पहुँचती तो शायद दूरियाँ कम होतीं और मुमकिन था कि हालात फिर बदलते, आलमी ताक़तों की निगाहें इस मुबारक सरज़मीन पर हैं जो मुसलमानों के लिए मलजा व मावा है। काश कि इसी दर्द व फ़िक्र और हक़ीक़त शनासी के साथ हमारे उलमा फिर उन अहल–ए–इक़्तिदार से मुख़ातिब हों और उनको ख़तरात से आगाह करें और कोई कहने वाला फिर यह कहे कि अगर तुम्हें मज़बूत और मुस्तहकम इक़्तिदार चाहिए तो उसका भी रास्ता यही है कि तुम दीन से वाबस्तगी मज़बूत करो, मुहम्मद अरबी (स0अ0व0) से सच्ची वफ़ादारी का सुबूत दो और इस निस्बत की लाज रखो, मुसलमानों के दिल तुम्हारे साथ होंगे।

नहीं वुजूद हुदूद व सुगूर से इसका मुहम्मद अरबी से है आलम–ए–अरबी

तक़्वा क्या है?

बिलाल अब्दुल हयि हसनी नदवी

तस्वीर का मसला:

तस्वीरों का मसला भी बहुत अहम है। इस समय स्मार्ट फोन ने तस्वीरों का चौपट दरवाज़ा खोल दिया है और मोबाइल से तस्वीरें लेने की एक आम शक्ल बन गई है। बहुत से लोग कहते हैं कि इसमें हर्ज की कोई बात नहीं, हालांकि यह ऐसी चीज़ें हैं जिनमें बेहतर सूरत यह होती है कि ऐसे काम बेज़रूरत बिल्कुल न किए जाएँ। अफ़सोस की बात यह है कि दीनी घरानों में भी यह बातें आम हो गई हैं और छोटे–छोटे बच्चे तस्वीरें वग़ैरह उतारते नज़र आते हैं और इसके मुताल्लिक़ लोग यह कह देते हैं कि अब तो इब्तिला–ए–आम है, इसमें हर्ज की कोई बात नहीं है। यह ऐसा मसला है जो शुरू से इख़्तिलाफ़ी रहा है। बहुत से हज़रात इसको यह कहकर जायज़ कहते थे कि यह तस्वीरगरी नहीं है, बल्कि हक़ीक़त में यह अक्स है। इसलिए जो लोग इसको तस्वीरगरी कहते हैं, वह नाजायज़ मानते हैं और जो अक्स कहते हैं, वह जायज़ समझते हैं।

रिवायात में "मुज़ाहात–ए–ख़ल्क़ुल्लाह" की जो बात आती है, उसको सामने रखकर जवाज़ का फ़तवा देने वाले हज़रात यह बात कहते हैं कि मोबाइल के ज़रिए तस्वीरगरी में मुज़ाहात की सूरत ही नहीं होती। इसमें तो अल्लाह की बनाई हुई मख़्लूक़ का आदमी अक्स लेता है, न कि तस्वीर बनाता है। इसलिए मुज़ाहात की कोई बात नहीं है। इसके बरअक्स कुछ हज़रात इसको अक्स नहीं मानते, बल्कि तस्वीरगरी बताते हैं। हासिल यह कि यह एक इख़्तिलाफ़ी मसला रहा है। बहुत से लोग इसको शिद्दत के साथ मना करते हैं। उलमा–ए–अरब इसको जायज़ क़रार देते हैं और उलमा–ए–हिंद इसको नाजायज़ कहते हैं।

यह एक अजीब फ़र्क़ है। बहुत–सी चीज़ों को यहाँ के लोग जायज़ समझते हैं और उलमा–ए–अरब उनको नाजायज़ समझते हैं, जैसे तंबाकू वग़ैरह, जबकि यहाँ के लोग उसके जवाज़ के क़ाइल हैं। दरअसल यह अपने–अपने ज़ौक़ व फ़हम की बात है और अपना–अपना इस्तिदलाल भी इसकी एक बड़ी बुनियाद है।

तक़्वा की ज़िंदगी:

ग़ौर की बात यह है कि जिन चीज़ों के मुताल्लिक़ बहुत से लोग जवाज़ के क़ाइल हों और बहुत से लोग अदम–ए–जवाज़ के, ऐसी सूरत में बेहतर यह है कि आदमी जहाँ तक मुमकिन हो सके, परहेज़ करे और कम से कम उसका बेज़रूरत ज़्यादा इस्तेमाल न किया जाए। आप (स0अ0व0) ने हदीस में यह बात फ़रमाई कि तुम उन चीज़ों को छोड़ दो जिनमें हर्ज महसूस नहीं किया जाता। इसका फ़ायदा यह होगा कि उन चीज़ों से बच जाओगे जिनमें हर्ज महसूस किया जाता है और हर्ज होता है। आप (स0अ0व0) ने इसका दूसरा फ़ायदा यह भी बताया कि तुम मुत्तक़ीन में शुमार किए जाओगे। फ़रमाया:

لا يبلغ العبد أن يكون من المتقين حتى يدع ما لا بأس به حذراً لما به بأس

"बंदा उस वक़्त तक मुत्तक़ी लोगों में शामिल नहीं हो सकता, जब तक कि वह उन चीज़ों को भी न छोड़ दे जिनमें कोई हर्ज नहीं, इस ख़ौफ़ से कि कहीं वह ऐसी चीज़ में मुब्तिला न हो जाए जिसमें हर्ज है।" (सुनन तिरमिज़ी: 2451)

मालूम हुआ कि यह असल तक़्वा की ज़िंदगी है। फ़तवे की ज़िंदगी और है तक़्वा की ज़िंदगी और है। किसी काम के मुताल्लिक़ फ़तवा यह है कि ठीक है, जायज़ है, कर सकते हैं, लेकिन अगर आदमी उसमें तवग़्गुल करता चला जाता है, आगे बढ़ता चला जाता है तो बहरहाल यह डर पैदा हो जाता है कि वह उन चीज़ों

में दाख़िल न हो जाए जो शायद फ़तवे की रौ से भी जायज़ न हों। फिर नौबत यहाँ तक पहुँच जाती है कि बाज़ मर्तबा आदमी फ़तवा भी नहीं पूछता। वह यह सोच लेता है कि मैंने पहले जब पूछा था तो उस वक़्त किसी क़दर जायज़ बता दिया गया था। इसके नतीजे में न जाने कैसे–कैसे वाक़्यात सामने आते हैं। लखनऊ का एक पुराना वाक़्या है, एक जगह होटल में तहक़ीक़ हुई तो पता चला कि कुत्ते का गोश्त काटकर पकाया जाता था। दरअसल उन्होंने इस बात को अपने मफ़हूम में ले लिया कि ज़बीहा होना चाहिए, जबकि हलाल व हराम का इल्म होना भी तो ज़रूरी है। अगर आदमी इसी तरह हराम माल पेट में डालता रहेगा तो इसका नतीजा क्या होगा? जो जिस्म हराम गोश्त और हराम ग़िज़ा से परवान चढ़ेगा, तो उसमें कहाँ से बरकत पैदा होगी और कहाँ से अल्लाह की मदद शामिल–ए–हाल होगी?!

विरासत की तक़सीम का भी यही मसला है। इसमें भी आम तौर से बहुत बे–एहतियातियाँ होती हैं। एक मुश्तरका बाग़ है, उसमें आदमी सोचता है कि क्या हर्ज है, वह गया और उसने फल खा लिया या फल लाया और दूसरे शराकतदारों से पूछने की ज़रूरत नहीं समझी। यह भी नामुनासिब बात है। हज़रत मौलाना अली मियाँ नदवी (रह0) की वालिदा के भाई का क़िस्सा है। उनका एक मुश्तरका बाग़ था। वहाँ कोई एक फल गिरता था तो वह उसको उठाकर लाते थे और अपनी बहन से पूछते थे कि क्या हम इसको खा लें? वह कहती थीं कि इसमें कोई हर्ज नहीं, आप खा लें, लेकिन वह कहते कि इसमें तुम्हारा भी हिस्सा है और तुमसे पूछना भी ज़रूरी है।

ज़ाहिर है यह एहतियात की बात है और एहतियात का तक़ाज़ा भी यही है। अगर इसका ख़्याल रखा जाएगा और उन चीज़ों में जिनके मुताल्लिक़ कह देते हैं कि इतना तो ठीक है और चलता है। अगर उनको छोड़ दिया जाएगा तो इसका फ़ायदा यह होगा कि उन चीज़ों से बचना आसान हो जाएगा जिनमें हर्ज है और जो जायज़ नहीं हैं। फिर तक़वा की सही ज़िंदगी को इख़्तियार करना भी इंशाअल्लाह आसान हो जाएगा।

मौजूदा दुनिया का सबसे नया मज़हब

हज़रत मौलाना सैय्यद मुहम्मदुल हसनी नदवी (रह0)

"हमारी मौजूदा दुनिया के मुताल्लिक़ आज जो भी कहा जाए और लिखा जाए इसमें शक नहीं कि इसका सबसे बड़ा मज़हब "नफ़्स परस्ती" और इसका सबसे बड़ा पीर "शिकम" है और यह ऐसा इंटरनेशनल पीर है कि इसका हल्क़ा–ए–अरादत मशरिक़ व मग़रिब और अरब व अजम हर जगह फैला हुआ है और इसका सिक्का हर मुल्क में राइज है। उसने बहुत से छोटे–छोटे पीरों मसलन: क़ौमियत, आमिरियत, रंग व नस्ल और ज़बान व वतन के पुजारियों को अपनी बिसात बिछाने और अपना हल्क़ा बनाने की इजाज़त ज़रूर दे रखी है लेकिन इस शर्त पर कि सब उसके मातहत बनकर रहें और उसी से "कस्ब–ए–फ़ैज़" करें और हर फ़ायदा व आमदनी में उसको मुक़द्दम रखें। इसका नतीजा यह है कि सोसाइटी की नज़रों से वे मेयार ओझल हो गए हैं जो इस हमागीर मज़हब और उसके सबसे बड़े पादरी या पुरोहित के ख़िलाफ़ अलम–ए–बग़ावत बुलंद करते थे और उसके सारे असरात (जिसको हम अपनी ज़बान में मेयार–ए–ज़िंदगी की बुलंदी, बेहतर इक़्तिसादियात, माद्दी तरक़्क़ी और मआशी ख़ुशहाली जैसे ख़ुशनुमा नामों से ताबीर करते हैं) से आज़ाद होकर अपने अमल से यह ऐलान करते थे कि इंसानियत सिर्फ़ अच्छा खाने, अच्छा पहनने और अच्छे मकान में रहने का नाम नहीं है बल्कि यह इंसान की ऐसी ज़रूरत है जिसकी तकमील क़द्र व शुक्रगुज़ारी और इत्मिनान के साथ होनी चाहिए।"

तस्वीरकशी में बढ़ती बेएहतियाती

मौलाना ख़ालिद सैफ़ुल्लाह रहमानी

अल्लाह तआला की सिफ़ात में से एक अहम सिफ़त "मुसव्विर" यानी सूरतगर होना है; क्योंकि अल्लाह तआला अपनी मख़्लूक़ात को सिर्फ़ जिस्म ही नहीं देते, उसके मुनासिब–ए–हाल सूरत भी अता फ़रमाते हैं, जिससे चीज़ें और शख़्सियतें पहचानी जाती हैं। अल्लाह तआला की यह ऐसी सिफ़त है कि अगर इंसान ठंडे दिल से ग़ौर करे तो यही एक बात उसके ईमान लाने के लिए काफ़ी है। फिर ऐसा नहीं हुआ कि तमाम चीज़ों को एक ही शक्ल दे दी गई, बल्कि हर क़िस्म की अलग–अलग शक्ल है और उसके तहत आने वाले हर फ़र्द की भी अलग शक्ल है। सूरतगरी का यह कमाल इंसान के अंदर तो बिल्कुल ज़ाहिर है कि एक ही माँ–बाप से पैदा होने वाले हर बच्चे की शक्ल अलग होती है, रंग में भी फ़र्क़ होता है, नाक–नक़्शे में भी और क़द–व–क़ामत में भी। लेकिन यह सिर्फ़ इंसान ही पर मौक़ूफ़ नहीं, हाथी, शेर, चीता, बैल और बकरी वग़ैरा हर जानदार को अलग–अलग सूरतों से नवाज़ा गया है। फिर ऐसा भी नहीं है कि तमाम बकरियाँ एक ही सूरत की हों कि पहचानी न जा सकें, अल्लाह तआला की तरफ़ से उनमें भी ऐसा फ़र्क़ रखा गया है कि हज़ारों की भीड़ में जानवर का मालिक अपने जानवर को पहचान लेता है। क़ुदरत का यही ऐजाज़ दरख़्तों, फूलों और फलों में भी मौजूद है और इसी तनव्वो की वजह से उन्हें ब–आसानी पहचान लिया जाता है।

अल्लाह तआला की यह नेमत उसकी क़ुदरत के साथ–साथ उसकी वहदानियत की भी रौशन और वाज़ेह दलील है; मगर इंसान ने अपनी एहसान–नाशिनासी और नाशुक्री की वजह से इसी को शिर्क जैसे गुनाह का ज़रिया बना लिया और इंसानों व जानदारों की मूरतें बनाकर उनकी परस्तिश शुरू कर दी। शरीअत–ए–मुहम्मदी चूँकि अल्लाह की तरफ़ से उतारी जाने वाली आख़िरी शरीअत है, आप (स0अ0व0) के बाद न कोई नबी आएगा, न कोई किताब नाज़िल होगी और न कोई और शरीअत इंसानियत के लिए भेजी जाएगी; इसलिए इस बात का ख़ुसूसी एहतिमाम फ़रमाया गया कि जो चीज़ें दूसरी क़ौमों में मुश्रिकाना अफ़कार के फैलने का सबब बन गई थीं, इस दीन–ए–मतीन में उनको मना कर दिया जाए और वह दरवाज़े बंद कर दिए जाएँ जो इंसान को गुमराही की तरफ़ ले जाते रहे हैं। जैसे पिछली शरीअतों में बतौर–ए–ताज़ीम अपने बड़ों को सज्दा करने की इजाज़त थी, जैसा कि हज़रत यूसुफ़ (अलैहिस्सलाम) के वाक़्ये से ज़ाहिर होता है। (जामेउल बयानः 13/356)

लेकिन रसूलुल्लाह (स0अ0व0) ने इससे मना फ़रमा दिया। (सुनन इब्ने माजाः 1853)

रब के माने परवरदिगार के साथ–साथ मालिक के और अब्द के मानी बंदे के साथ–साथ ग़ुलाम के भी हैं। इस दूसरे मानी के लिहाज़ से ग़ुलाम अपने आक़ा को रब और आक़ा अपने ग़ुलाम को अब्द कहा करते थे। आप (स0अ0व0) ने इस ताबीर से मना फ़रमा दिया और तलक़ीन फ़रमाई कि मालिक को सैय्यद और ग़ुलाम को मौला कहा जाए। (मुस्लिमः 2249)

इसी तरह के अहकाम में तस्वीर का मसला भी आता है। क़ुरआन मजीद से इशारा मिलता है कि गुज़िश्ता अक़वाम में मुजस्समा–साज़ी और तस्वीरकशी की इजाज़त थी, जैसा कि हज़रत सुलैमान (अलैहिस्सलाम) के वाक़्ये में है कि हज़रत सुलैमान (अलैहिस्सलाम) के लिए जिन्नात मुजस्समे बनाया करते थे।

(सूरह सबाः 13)

लेकिन शरीअत–ए–मुहम्मदी में तस्वीरकशी को शिद्दत के साथ मना फ़रमा दिया गया, क्योंकि यह सूरतगरी और तस्वीरसाज़ी आहिस्ता–आहिस्ता शिर्क का सबब बन जाती थी। आप (स0अ0व0) ने फ़रमाया कि क़यामत के दिन सबसे ज़्यादा अज़ाब उस शख़्स को

होगा जो तस्वीर बनाए; क्योंकि वह अल्लाह तआला के फ़ेले–तख़्लीक़ की नक़ल करता है:

أشــد الناس عذاباً عند الله يوم القيامة الذين يضاهون بخلق الله

आप (स0अ0व0) ने यह भी इरशाद फ़रमाया कि जिस घर में तस्वीर होती है, उस घर में रहमत के फ़रिश्ते दाख़िल नहीं होते:

إن البيت الذى فيه الصور لا تدخله الملائكة

इसलिए उसूली तौर पर यह बात मुत्तफ़क़ अलैह है कि तस्वीरकशी हराम है; अलबत्ता अहादीस, सहाबा के आसार और अहकाम–ए–शरीअत के मक़ासिद को सामने रखते हुए कुछ तफ़सीलात में फ़ुक़हा के दरमियान इख़्तिलाफ़–ए–राय है। इमाम मालिक (रह0) के नज़दीक सायादार तस्वीर यानी स्टेच्यू बनाना हराम है और बे–साया तस्वीरें जो काग़ज़ या कपड़े पर बनाई जाएँ, मकरूह हैं। पस सायादार तस्वीर के हराम होने पर मज़ाहिब–ए–अरबा का इत्तिफ़ाक़ है और बड़ी हद तक यह इजमाई मसला है। अफ़सोस कि कुछ मुस्लिम मुल्कों में डिक्टेटर हुक्मरानों ने अपने मुजस्समे नस्ब कराए।

जो तस्वीरें सायादार न हों, काग़ज़ पर, कपड़े पर, दीवार वग़ैरह पर बनाई गई हों, उनके सिलसिले में इख़्तिलाफ़ है। कुछ फ़ुक़हा इसको बिल्कुल हराम क़रार देते हैं, यही ज़्यादातर अहल–ए–इल्म की राय है। इमाम मालिक (रह0) के नज़दीक मकरूह है और फ़ुक़हा–ए–अहनाफ़ में मुतअख़्ख़रीन ने इसे मकरूह–ए–तहरीमी क़रार दिया है और मकरूह–ए–तहरीमी भी क़रीब–ब–हराम होता है। चुनाँचे इमाम नववी (रह0) फ़रमाते हैं:

"शवाफ़े और दूसरे फ़ुक़हा ने कहा है कि जानदार की तस्वीर सख़्त हराम है। यह कबीरा गुनाहों में से है और यह उन सख़्त वईदों का मिस्दाक़ है जिनका हदीस में ज़िक्र आया है। चाहे यह ऐसी चीज़ पर बनाई जाए जिसका एहतराम नहीं किया जाता है या क़ाबिल–ए–एहतराम चीज़ पर बनाई जाए, हर हाल में हराम है; चाहे वह कपड़े पर हो, या बिस्तर पर या दिरहम व दीनार पर या बर्तन और दीवार वग़ैरह पर; इसलिए कि इसमें अल्लाह तआला की तख़्लीक़ की मुशाबहत इख़्तियार करना है।"

इससे यह बात वाज़ेह हो गई कि जब तस्वीर किसी भी चीज़ पर नक़्श हो जाए तो फिर वह हराम के दायरे में आ जाती है।

पहले ज़माने में तस्वीर हाथों से बनाई जाती थी और इसके लिए आला दर्जे के माहिर होते थे। फिर तस्वीर की एक नई सूरत का आग़ाज़ 1816 ईस्वी में हुआ और उसने तरक़्क़ी करते–करते बीसवीं सदी के शुरू में उस वक़्त बहुत उमूम हासिल कर लिया, जब 1913 में तस्वीर खींचने वाला कैमरा वजूद में आया। कैमरे की तस्वीर आने के बाद अहल–ए–इल्म के दरमियान इख़्तिलाफ़ पैदा हुआ कि यह हाथों से बनाई जाने वाली तस्वीर ही के हुक्म में है और हराम है या इस तस्वीर के हुक्म में नहीं है? जम्हूर उलमा ने इसे हराम क़रार दिया। सऊदी अरब के मुफ़्तियान में शेख़ मुहम्मद बिन इब्राहीम आले शेख (रह0), शेख़ अब्दुल अज़ीज़ इब्ने बाज़ (रह0), मशहूर आलिम–ए–हदीस शेख़ नासिरुद्दीन अलबानी (रह0) और बेशतर उलमा ने इसे नाजायज़ क़रार दिया। बर्रे–सग़ीर में तो दो–चार को छोड़कर सबने इसके हराम होने का फ़तवा दिया। यहाँ तक कि मौलाना सैय्यद अबुल आला मौदूदी (रह0) जो ऐसे मसाइल में मुतवस्से समझे जाते हैं, उन्होंने भी इसे नाजायज़ ही कहा और कुछ अहल–ए–इल्म जो इब्तिदा में जवाज़ के क़ाइल थे, उन्होंने भी अपनी इस राय से रुजू कर लिया, जैसे अल्लामा सैय्यद सुलैमान नदवी (रह0)।

लेकिन उलमा–ए–मिस्र ने इसके जवाज़ का फ़तवा दिया, जिनमें अल्लामा मुहम्मद बख़ीत मुतीई हनफ़ी (रह0) और मुफ़्ती–ए–आज़म मिस्र हुसैन मख़लूफ़ (रह0) सर–ए–फ़ेहरिस्त हैं। फिर बेशतर उलमा–ए–अरब ने इसी नुक़्ता–ए–नज़र को इख़्तियार कर लिया। रिवायती कैमरे की तस्वीर के बाद तस्वीर की दुनिया में एक बड़ा इन्क़िलाब आया और डिजिटल कैमरे की ईजाद हुई, जिसमें इलेक्ट्रॉनिक ज़र्रात मिलकर किसी चीज़ की शक्ल इख़्तियार करते हैं और जब उन्हें स्क्रीन से हटा दिया जाता है तो ये ज़र्रात बिखर जाते हैं। फिर दोबारा डिजिटल आला उन्हें जमा करता है। सवाल पैदा हुआ कि क्या इस पर तस्वीर का इतलाक़ होगा या यह उस अक्स की तरह है जो आईने के सामने खड़े होते

वक़्त नज़र आता है? इस सिलसिले में अहल–ए–इल्म के दरमियान इख़्तिलाफ़ पैदा हुआ। बर्रे–सग़ीर में उलमा की बड़ी तादाद ब–एतिबार–ए–फ़तवा अभी भी इसे हराम कहती है; लेकिन उलमा–ए–अरब और बर्रे–सग़ीर के कुछ चोटी के फ़ुक़हा ने इसे जायज़ क़रार दिया है। कुछ लोगों ने इसे इसलिए जायज़ क़रार दिया है कि इस पर तस्वीर की फ़िक़ही तारीफ़ सादिक़ नहीं आती और कुछ लोगों ने इस नुक़्ता–ए–नज़र से कि मौजूदा दौर में यह इब्लाग़ का निहायत अहम और मुअस्सिर ज़रिया है, जिसका मुनकरात की तरवीज, मुख़ालिफ़–ए–इस्लाम अफ़कार की इशाअत और इस्लाम और मुसलमानों के ख़िलाफ़ प्रोपेगेंडे के लिए इस्तेमाल किया जा रहा है; इसलिए ज़रूरी है कि मुसलमान अम्र–बिल–मारूफ़, नहीं–अनिल–मुनकर, इस्लाम की दावत और दीन–ए–हक़ के दिफ़ा के लिए इसका इस्तेमाल करें। राक़िमुल–हुरूफ़ के ख़्याल में बर्रे–सग़ीर के बेशतर उलमा ने इसी पहलू को सामने रखकर इसमें तवस्से का रास्ता इख़्तियार किया है।

लेकिन बहुत–सी दफ़ा किसी हक़ीक़ी ज़रूरत और वाक़ई मजबूरी के तहत जो तवस्से इख़्तियार किया जाता है, उसमें शराइत व क़ुयूद की सरहदें टूटती जाती हैं और उसके इस्तेमाल में बे–एहतियाती आख़िरी हदें पार कर लेती है। तस्वीर के मामले में भी कुछ यही सूरत–ए–हाल पैदा हो रही है। अहल–ए–सियासत और अहल–ए–दुनिया से क्या शिकायत कीजिए कि उनके यहाँ तो हलाल व हराम की कोई सरहद ही नहीं है; लेकिन उन लोगों को तवज्जो करने की ज़रूरत है जो दीनी ख़िदमतें अंजाम देते हैं, दीनी तालीमी इदारे चलाते हैं, मुक़्तदा–ए–क़ौम व मिल्लत हैं और जिन्हें शरीअत–ए–इस्लामी का तर्जुमान समझा जाता है कि उनके यहाँ भी तस्वीर के मामले में बड़ी बे–एतिदाली और बे–एहतियाती की रविश सामने आ रही है। नीज़ अवाम उनके क़ौल व फ़ेल के दरमियान एक तज़ाद–सा महसूस करते हैं।

इस बात का तज़किरा मुनासिब मालूम होता है कि अव्वलन तो आज भी अहल–ए–इल्म की एक मोतबर तादाद हर तरह की तस्वीर को नाजायज़ ही क़रार देती है, लेकिन अगर हम उन हज़रात की बात को क़ुबूल कर लें जिनके नज़दीक डिजिटल फ़ोटोग्राफ़ी पर तस्वीरकशी का इतलाक़ नहीं होता, तब भी इसमें कोई इख़्तिलाफ़ नहीं कि रिवायती कैमरा या डिजिटल कैमरे से ली गई तस्वीर काग़ज़, कपड़े, प्लास्टिक की शीट, दीवार, ग्लास और इस तरह की चीज़ों पर नक़्श हो जाए तो फिर उसके हराम होने में कोई इख़्तिलाफ़ नहीं। अब इसकी गुंजाइश किसी अहम ज़रूरत ही के लिए हो सकती है, जैसे पासपोर्ट, वीज़ा, आधार कार्ड, स्कूल में एडमिशन वग़ैरह या किसी मिल्ली मसलहत के लिए जैसे रैली और जलसे की तक़रीर, ताकि यह बात बावर कराई जाए कि मुसलमानों या हमवतनों की बड़ी तादाद हमारे मौक़िफ़ के साथ है।

मगर अब इस वक़्त सूरत–ए–हाल यह है कि पहले तो अख़बार में ख़बरों के साथ तस्वीरें आती थीं, अब दीनी जलसों वग़ैरह के इश्तिहार में भी इदारे के ज़िम्मेदार और मुक़र्रिरीन की तस्वीरें शाया की जाती हैं। फिर यह जज़्बा–ए–तशहीर और आगे बढ़ा और जलसों के पोस्टर, जिनमें सिर्फ़ तहरीर हुआ करती थी, उनमें भी मुक़र्रिरीन के चेहरे छपने लगे। पहले सिर्फ़ सियासी पार्टियाँ ऐसे बैनर शाया करती थीं, अब मज़हबी तंज़ीमें भी करने लगीं। फिर एक क़दम आगे बढ़ाते हुए कुछ उलमा अख़बारात में अपने मज़ामीन इस तरह शाया कराने लगे कि उसमें उनके नाम के साथ–साथ उनकी तस्वीरें भी पूरी आबो–ताब के साथ मौजूद होती हैं। बात इससे भी आगे निकली और दीनी हलक़े के कुछ मुसन्निफ़ीन ने अपनी किताबों के सरवरक़ पर तस्वीरें शाया करना शुरू कर दीं, या अगर किसी शख़्सियत पर क़लम उठाया या किसी साहिब–ए–इल्म का तज़किरा मुरत्तब किया तो उस पर साहिब–ए–तज़किरा की तस्वीर तबअ कर दी। यह सूरत–ए–हाल बहुत ही क़ाबिल–ए–तवज्जो है। क़ौल व फ़ेल का तज़ाद बे–एतिबारी पैदा करता है और उलमा के बारे में अवाम में बदगुमानियाँ पैदा होती हैं; इसलिए इस पर संजीदगी के साथ ग़ौर करना चाहिए और उलमा व ख़वास को इस हक़ीक़त को पेश–ए–नज़र रखना चाहिए कि उनका अमल लोगों के लिए संग–ए–मील का काम करता है और लोग उनको देखकर सफ़र–ए–ज़िंदगी की राहें मुतअय्यन करते हैं!

नफ़क़ा के मसाइल

मुफ़्ती राशिद हुसैन नदवी

नफ़क़ा के लुग़वी व इस्तलाही मानेः

लुग़त में नफ़क़ा उस माल को कहते हैं जिसको कोई अपने बाल–बच्चों पर ख़र्च करता है, यह लफ़्ज़ ''नुफ़ूक़'' से मुश्तक़ है जिसके मायने हलाक और ख़त्म होने के होते हैं और इस्तिलाह में नफ़क़ा खाना, कपड़ा और रिहाइश को कहते हैं। (शामीः ३/५७१–५७२)

नफ़क़ा वाजिब होने के असबाबः

नफ़क़ा वाजिब होने के शरई ऐतबार से तीन असबाब हैं:

(१) ज़ौजियत; चुनांचे बीवी का नफ़क़ा उसके शौहर पर वाजिब है।

(२) करावत; जैसे औलाद, माँ–बाप और भाई–बहन का नफ़क़ा।

(३) मिल्कियत; यानी ग़ुलाम, बांदी और ज़ेर–ए–मिल्कियत जानवरों का नफ़क़ा, ज़ेल में हम तीनों असबाब की कुछ तफ़्सील बयान कर रहे हैं।

(शामीः ३/५७२)

बीवी का नफ़क़ाः

शौहर पर उसकी बीवी का नफ़क़ा वाज़िब है, चाहे वह मुसलमान हो या किताबी (ईसाई, यहूदी) हो, ग़रीब हो या मालदार हो, उससे जिमाअ (संबन्ध) किया हो या न किया हो, बालिग़ हो या ऐसी नाबालिग हो जिससे जिमाअ करना मुमकिन है। (हिन्दियाः १/५४४)

बीवी का नफ़क़ा उसके शौहर पर वाज़िब होने का ज़िक्र कुरआन मजीद में भी आया है और अहादीस में भी इसका ज़िक्र मौजूद है, चुनांचे अल्लाह तआला का शौहरों को हिदायत देते हुए इरशाद हैः

أَسْكِنُوهُنَّ مِنْ حَيْثُ سَكَنتُم---

"इन औरतों को रहने के लिए घर दो जहाँ तुम खुद रहते हो, अपनी वुसअत (सामर्थ्य) के मुताबिक़ और उनको तकलीफ़ मत पहुँचाओ ताकि उन पर तंगी करो (आगे है) हर वुसअत वाले को अपनी वुसअत के बक़द्र ख़र्च करना चाहिए और जिसकी रोज़ी तंग हो तो वह जो भी अल्लाह ने उसे अता किया उसी में से ख़र्च किया करे।"

(सूरह तलाक़: 6–7)

दूसरी जगह इरशाद हैः

وَعَلَى الْمَوْلُودِ لَهُ رِزْقُهُنَّ وَكِسْوَتُهُنَّ بِالْمَعْرُوفِ

"और बाप पर उन औरतों का खाना–कपड़ा मारूफ़ तरीक़े पर लाज़िम है।" (सूरह बक़राः 233)

इसी तरह कई अहादीस में भी बीवी के नफ़क़ा के लाज़िम होने का हुक्म और हिदायत दी गई है, चुनांचे हज्जतुल विदाई के मौक़े पर अरफ़ात के मैदान के तवील और मशहूर ख़ुत्बे में कई हिदायतें देते हुए आंहज़रत (स0अ0व0) ने फ़रमायाः

ولهن علىكم رزقهن وكسوتهن بالمعروف

"और उन बीवियों का नान–नफ़क़ा और कपड़ा तुम्हारे ऊपर लाज़िम है।" (मुस्लिम, किताबुल हज, बाब हज्जतुन्नबी (स0अ0व0): 5364)

और हज़रत हिन्दा ने जब अपने शौहर हज़रत अबू सुफ़ियान के बुख़्ल (कंजूसी) और ख़र्च न देने की शिकायत की तो आप (स0अ0व0) ने फ़रमायाः

خذى ما يكفيك وولدك بالمعروف

"जो तुम्हारे और तुम्हारे बेटे के लिए काफ़ी हो उसको उर्फ़ के मुताबिक़ ले लिया करो।"

(बुख़ारी, किताबुल नफ़क़ातः 5364)

हदीस शरीफ़ में यह भी बयान किया गया कि अगर सही नीयत के साथ और सवाब की उम्मीद के साथ बीवी का ख़र्च उठाया जाए तो उसे सदक़ा करने का सवाब मिलता है, चुनांचे हज़रत अबू मसूद अंसारी (रज़ि0) की रिवायत है कि नबी करीम (स0अ0व0) ने फ़रमायाः

"जब मुसलमान सवाब की नीयत से अपने बाल–बच्चों पर ख़र्च करता है तो यह उसके लिए सदक़ा

होता है।" (बुख़ारी, बाबुन्नफ़क़ातः 5351, मुस्लिमः 1002)

अब हम ज़ेल में बीवी के नफ़क़ा से मुताल्लिक चन्द मसाइल का ज़िक्र कर रहे हैंः

१– जब बीवी बिलावजह रुख़्सती से इनकार करे या शौहर की इजाज़त के बिना घर छोड़कर चली जाए तो उसको नाशज़ा (नाफ़रमान) करार दिया जाएगा और वह नफ़क़ा की मुस्तहिक़ नहीं होगी, लेकिन अगर बीवी रुख़्सती के लिए तैयार हो लेकिन शौहर उसको रुख़्सत न कराए तो वह नाशज़ा नहीं है, उसे नफ़क़ा का हक़ हासिल होगा। (शामीः 3/575, हिन्दियाः 1/545)

२– अगर बीवी अपने किसी हक़ के न मिलने की वजह से रुख़्सती से इनकार करे मसलनः महेर–ए–मुअज्जल (नक़द महेर) वसूल न होने की वजह से रुख़्सती से इनकार करे तो वह नाशज़ा नहीं मानी जाएगी और उसको नफ़क़ा देना होगा। (हिन्दियाः 545)

३– अगर बीवी शौहर के घर में हो, लेकिन जिमाअ पर शौहर को कुदरत (सामर्थ्य) न दे तो वह नाशज़ा नहीं है लिहाज़ा नफ़क़ा की मुस्तहिक़ होगी लेकिन बिलावजह जिमाअ से रोकना गुनाह का काम है। (हिन्दियाः 546) चुनांचे कई अहादीस में इसकी मज़म्मत वारिद हुई है।

४– अगर बीवी उस घर की मालिक हो जिसमें वह शौहर के साथ रहती है और शौहर को घर में न आने दे तो वह नाशज़ा के हुक्म में होगी और उसे नफ़क़ा का हक़ नहीं होगा। (हिन्दियाः 1/545, शामीः 3/577)

५– अगर शौहर किसी जुर्म में जेल में बन्द हो जाए तो उसकी बीवी–बच्चों का नफ़क़ा साक़ित (ख़त्म) नहीं होगा और अगर बीवी जेल चली जाए तो अगर शौहर का उसके पास तन्हाई में मिलना मुमकिन हो तो नफ़क़ा रहेगा वरना साक़ित हो जाएगा। (हिन्दियाः 545)

६– अगर शौहर और बीवी दोनों कम उम्र की वजह से जिमाअ पर कुदरत न रखते हों तो शौहर पर बीवी का नफ़क़ा वाज़िब नहीं होगा। (हिन्दियाः 1/546)

७– अगर बीवी बड़ी उम्र की हो और शौहर इतनी छोटी उम्र का हो कि जिमाअ पर कुदरत न रखता हो या शौहर इन्नीन (नामर्द) या मजबूब (आज़ा–ए–तनासुल कटा हुआ) होने की वजह से जिमाअ पर कुदरत न रखता हो तो नफ़क़ा साक़ित नहीं होगा, इसलिए कि कमी औरत की तरफ़ से नहीं है मर्द की तरफ़ से है और वुजूब–ए–नफ़क़ा का सबब यानी निकाह के ज़रिये बीवी को रोक लेने का हक़ पाया जा रहा है। (हिन्दियाः 1/546)

८– अगर बीवी पागल हो या रतक़ा या क़रना (शर्मगाह की ऐसी हालत जिसके साथ जिमाअ मुमकिन नहीं होता) हो और उसकी रुख़्सती हो गई हो या रुख़्सती न हुई हो लेकिन बीवी की तरफ़ से रुख़्सती का इन्कार न हुआ हो तो वह नफ़क़ा की मुस्तहिक़ होगी, यही हुक्म उन तमाम औरतों का भी है जिनसे उम्र ज़्यादा हो जाने या कोई बीमारी हो जाने की वजह से जिमाअ मुमकिन न हो। (हिन्दियाः 1/546)

९– जब वह शौहर के साथ हज के लिए जाए तो नफ़क़ा की मुस्तहिक़ होगी, लेकिन अगर शौहर के बग़ैर जाए तो ख़्वाह महरम के साथ जाए या महरम के बग़ैर जाए, नफ़्ली हज के लिए जाए या हज्ज–ए–फ़र्ज़ के लिए जाए, मुफ़्ता–बिही–क़ौल के मुताबिक़ वह नफ़क़ा की मुस्तहिक़ नहीं होगी। (हिन्दयाः 1/546, शामीः 3/579)

नफ़क़ा में क्या चीज़ें शामिल हैं?

नफ़क़ा में वह चीज़ें शामिल हैं जिनकी उर्फ़ के मुताबिक़ औरत को ज़रूरत पड़ सकती है मसलनः खाने के लिए आटा, पानी, नमक, पकाने के लिए लकड़ियाँ या गैस, सर में लगाने के लिए तेल, कंघी, सफ़ाई के लिए साबुन, गर्मी और सर्दी के मुताबिक़ लिबास (कपड़ा), ऐसी रिहाइश जिसमें दूसरों की दख़ल–अंदाज़ी के बग़ैर मियाँ–बीवी रह सकें, जहाँ तक ताल्लुक़ है मेकअप के सामान का तो वह शौहर पर लाज़िम नहीं है अलबत्ता बेहतर है कि शौहर मुहैया (उपलब्ध) कर दे। (हिन्दियाः 1/549)

नफ़क़ा किस के ऐतबार से दिया जाएगा?

अगर मियाँ–बीवी के माली हालात में तफ़ावत (अंतर) हो तो शौहर के माली हालात के ऐतबार से नफ़क़ा मुकर्रर किया जाएगा, अलबत्ता अगर औरत किसी ऐसे ख़ानदान से हो जहाँ घर की औरतें घरेलू काम अंजाम नहीं देतीं, तो शौहर पर लाज़िम होगा कि या बीवी के लिए ख़ादिम (नौकर) का इन्तिज़ाम करे या उसे पका–पकाया खाना मुहैया करे लेकिन अगर औरत उमूर–ए–ख़ानादारी (घर के काम) अंजाम दे सकती है तो उनको अंजाम देना उस पर दियानतन लाज़िम होगा, (क़ज़ाअन लाज़िम नहीं होगा।) (शामीः 3/579)

अहल-ए-दावत से कुछ अहम गुज़ारिशें

अब्दुस्सुब्हान नाख़ुदा नदवी

पयाम–ए–इंसानियत की दावत दावत–ए–रहम है, यह दावत दावत–ए–एहसान है, यह दावत दावत–ए–नुसरत है, यह दावत गोया एक–दूसरे को क़रीब करने की दावत है। यह इस बात की दावत है कि इंसान इंसानियत की बुनियाद पर, मुल्क की बुनियाद पर और अल्लाह ने नफ़ा–रसानी की जो कैफ़ियत रखी है, उसकी बुनियाद पर, इंसान इंसान से जुड़ने वाला बन जाए और इंसान इंसान का काम आने वाला बन जाए।

अल्लाह की तरफ़ से तमाम मुसलमानों को इस काम का हुक्म है। अल्लाह तआला ने बहुत सारे मक़ामात पर अहल–ए–ईमान के लिए तमाम इंसानों की ख़ैरख़्वाही का हुक्म दिया है, इरशाद है:

وَقُولُواْ لِلنَّاسِ حُسْناً

"और लोगों से बेहतरीन अंदाज़ से बात करो।" (सूरह बक़राः 83)

एक दूसरी जगह इरशाद है:

وَقُل لِّعِبَادِي يَقُولُوا الَّتِي هِيَ أَحْسَنُ

"और मेरे बन्दों से फ़रमा दीजिए कि वही बात कहें जो बेहतर हो।" (सूरह इस्राः 53)

इन आयात से यह पता चला कि हक़ीक़त में हम सब से बेहतर काम करने के लिए, सबसे बेहतर बात बताने के लिए और पूरी इंसानियत के सामने अपने आपको सब से बेहतर तरीक़े पर नुमायाँ करने के लिए और अल्लाह की रज़ामंदी हासिल करने के लिए इस दुनिया में बरपा किए गए हैं। हमें काम भी बहुत ज़्यादा करना है, हमें जद्दोजहद (संघर्ष) भी बहुत ज़्यादा करनी है और बेहतर से बेहतर जो तरीक़े हैं उन तरीक़ों को हमें अपनाना है, इरशाद है:

الَّذِي خَلَقَ الْمَوْتَ وَالْحَيَاةَ لِيَبْلُوَكُمْ أَيُّكُمْ أَحْسَنُ عَمَلًا

"जिसने मौत व ज़िंदगी को इसलिए पैदा किया ताकि वह तुम्हें आज़मा कर देखे कि तुम में कौन अमल में ज़्यादा बेहतर है।"

ज़रूरत है कि काम के बेहतर से बेहतर तरीक़े ढूँढे जाएँ, मोहब्बत, आदाब–ए–मोहब्बत खुद सिखा देती है, यह काम इंशाअल्लाह काम का सलीक़ा और काम का तरीक़ा खुद सिखा देगा लेकिन इसके लिए हम अपने आपको इस पर कुर्बान करने वाले, आगे बढ़ने वाले, ख़ालिस अल्लाह रब्बुल इज़्ज़त की रज़ामंदी हासिल करने वाले, काम समझकर आगे बढ़ने वाले बन जाएं, हमारे अंदर इस तरह की कैफ़ियात हों, बाहम एक–दूसरे के साथ एक सच्चा ताल्लुक हो जो कारकुनान में होता है, इस्लाम ने जितने हुकूक दिए हैं वह इतने हैं कि मजीद किसी और हक़ की ज़रूरत नहीं है, इसको ताज़ा रखने के लिए अल्लाह ने यह बात फ़रमाई:

وَلَا تَنسَوُا الْفَضْلَ بَيْنَكُمْ

"और आपस के एहसान को भूल मत जाओ।"

मालूम हुआ कि आपस में एक–दूसरे के साथ एहसान के मामले को कभी फ़रामोश नहीं करना चाहिए।

अल्लाह रब्बुल इज़्ज़त ने जो दुनिया बनाई है और उसमें जिनको पैदा किया है उनमें आमतौर पर थोड़े इंसान वो होते हैं जो बहुत ज़हीन होते हैं और अजीब बात यह है कि जितने ज़हीन होते हैं उतने ही कमरोज़ होते हैं, लगभग २० फ़ीसदी अगर ज़हीन लोग हैं तो २० फ़ीसदी कमज़ोर लोग हैं और लगभग ६० से ७० फ़ीसदी लोग मुतवस्सित दरजे (मध्यम वर्ग) के होते हैं। इनमें से जिन लोगों के अंदर ज़हानत पाई जाती है, जिनके अंदर कुव्वत पाई जाती है, जिनके अंदर ताक़त पाई जाती है, उनके कामों में शैतान की कोशिश यह होती है कि वह उनको तकब्बुर (अहंकार) के अंदर मुब्तिला करता है, आदमी के अंदर एक ख़ास क़िस्म का तकब्बुर आ जाता है कि काम हम कर रहे हैं, इसीलिए जब भी इंसान रोज़ाना सुबह की नमाज़ पढ़े तो हज़ार दफ़ा अल्लाह की पनाह चाहे कि अल्लाह तआला मुतकब्बिर न बनाए,

शैतान मुतकब्बिर था तो उसका अंजाम कुरआन मजीद में अल्लाह रब्बुल इज़्ज़त ने साफ़–साफ़ बयान फ़रमा दिया:

قَالَ فَاهْبِطْ مِنْهَا فَمَا يَكُونُ لَكَ أَنْ تَتَكَبَّرَ فِيهَا فَاخْرُجْ إِنَّكَ مِنَ الصَّاغِرِينَ

"फ़रमाया यहाँ से उतर जा, यहाँ तू तकब्बुर नहीं कर सकता, बस निकल जा, यक़ीनन तू ज़लील है।" (सूरह आराफ़: 13)

दीन–ए–इस्लाम में तकब्बुर को बिल्कुल पसंद नहीं किया गया बल्कि हुज़ूर (स0अ0व0) का पैग़ाम तो यह है कि "तुम्हारी जो मदद होती है और तुम्हें जो रिज़्क़ दिया जाता है वह तुम्हारे कमज़ोरों ही की बुनियाद पर दिया जाता है।"

आदमी कमाता है और उसके छोटे–छोटे बच्चे होते हैं, आदमी समझता है कि मैं इन्हें कमा कर खिला रहा हूँ, जब कि हक़ीक़त में वो बच्चे कमा कर खिला रहे होते हैं, इसलिए कि वो कमज़ोर हैं, उन पर निगाह रखकर अल्लाह तआला बाप की मदद करता है। इसी तरह मुमकिन है कि जो लोग सलाहियत वाले हैं उनकी मदद कमज़ोर लोगों की बुनियाद पर की जा रही हो, इसलिए तकब्बुर से बहुत ज़्यादा दूर रहा जाए।

इसी तरह अगर बासलाहियत लोगों के मुताल्लिक किसी के दिल में हसद की कैफ़ियत पैदा हो तो याद रहे कि शैतान हासिद भी था, वह यह आयत याद रखे:

وَلاَ تَتَمَنَّوْاْ مَا فَضَّلَ اللّهُ بِهِ بَعْضَكُمْ عَلَى بَعْضٍ

"और अल्लाह ने तुम में एक को दूसरे पर जो बड़ाई दी है उसकी हवस में मत पड़ो।"

अल्लाह ने एक को दूसरे पर जो फ़ज़ीलत दी है वह तो फ़ज़ल है, उसकी तमन्ना न की जाए लेकिन इसके साथ–साथ आयत का यह टुकड़ा भी याद रखा जाए:

وَاسْأَلُوا اللَّهَ مِنْ فَضْلِهِ

"और अल्लाह से उसका फ़ज़ल माँगते रहो।"

अल्लाह से उसका फ़ज़ल माँगना चाहिए, अल्लाह का जो फ़ज़ल उस पर हुआ है, तुम पर भी होगा:

أَلَيْسَ اللَّهُ بِكَافٍ عَبْدَهُ

"क्या अल्लाह अपने बन्दे के लिए काफ़ी नहीं?!"

ज़ाहिर है कि जो अल्लाह उसके लिए काफ़ी है वही अल्लाह मेरे लिए भी काफ़ी होगा, बस अल्लाह से वही ताल्लुक क़ायम रहे, अल्लाह ने चाहा तो इस तरह की कोई ख़राबी किसी के अंदर पैदा नहीं होगी और हम उम्मीद करते हैं कि इंशाअल्लाह किसी के अंदर यह ख़राबी नहीं होगी और अगर होगी भी तो हमेशा के लिए साफ़ हो जाएगी।

एक दाई के लिए यह बात भी ज़रूरी है कि वह किसी से हसद न करे, शैतान हासिद भी था, इसीलिए वह बराबर वालों के अंदर फ़साद बरपा करता है कि वह कर रहा है तो मैं भी करूँ और उसको गिरा दूँ, या मैं उसके मुक़ाबले में इतना ज़्यादा काम करूँ कि वह गिरा दिया जाए।

इसी तरह शैतान मुफ़िसद भी था, जिस किसी के अंदर अगर ख़ुदा–न–ख़्वास्ता वह कैफ़ियत आ जाए तो जैसा कि मैंने पहले अर्ज़ किया, वह यह आयत याद रखे:

وَلَا تَنسَوُا الْفَضْلَ بَيْنَكُمْ

"और आपस के एहसान को भूल मत जाओ।"

आपस में एक–दूसरे के साथ एहसान करना, एक–दूसरे के साथ फ़ज़्ल का मामला करना, एक–दूसरे को आगे बढ़ाने की कोशिश करना, इसको कभी फ़रामोश न कर दिया जाए, जो शख़्स पीछे रहता है, दूसरे को आगे करने के लिए उसका पीछे रहना हक़ीक़त में आगे बढ़ना ही है।

इस वक़्त जितनी भी जमाअतें हैं, जितनी भी जमईयात हैं, जितने भी मदारिस हैं, जितने भी महाइद हैं, जितने भी इदारे हैं, अगर उनमें से किसी के अंदर इस तरह की कैफ़ियात पाई जा सकती हों तो यह इस वक़्त की एक बड़ी ज़रूरत है।

आदमी हर रोज़ अल्लाह रब्बुल इज़्ज़त की पनाह चाहे कि ऐ अल्लाह! मुझे न मुफ़िसद बनाना, न मुतकब्बिर बनाना, न हासिद बनाना, बस अपना बना ले, फिर इंसान सब भूल जाएगा, तकब्बुर भूल जाएगा, फ़साद भूल जाएगा, हसद भूल जाएगा, उसे अगर अपनी पड़ी होगी तो इस तरह के जितने तमाशे हैं उनको नज़रअंदाज़ कर देगा, अपने आपको बेहतर से बेहतर बनाने के लिए अल्लाह ने हमें पैदा किया है लेकिन दूसरों को गिरा कर नहीं, दूसरों को पछाड़ कर नहीं बल्कि दूसरों को अपने साथ लेकर, दूसरों की ख़ैरख़्वाही के जज़्बात रखकर हम इंशाअल्लाह आगे बढ़ेंगे और यह काफ़िला हमेशा रवाँ–दवाँ रहेगा।

औलाद की तालीम व तरबियत और वालिदैन की ज़िम्मेदारी

अमीन हसनी नदवी

औलाद अल्लाह तआला की अज़ीम नेमत और वालिदैन के लिए एक अहम अमानत है। इस अमानत की हिफाज़त और उसकी सही तरबियत वालिदैन की बुनियादी ज़िम्मेदारियों में से है। यह नस्ल समाज की इस्लाह में बुनियादी किरदार अदा कर सकती है। औलाद की तरबियत का मक़सद सिर्फ़ उसे तालीमयाफ़्ता बनाना या दुनियावी कामयाबियों से हमकिनार करना नहीं, बल्कि उसके अंदर ईमान व अक़ीदे की पुख़्तगी, अख़्लाक़ व किरदार की पाकीज़गी, इबादात की पाबंदी, ख़िदमत–ए–ख़ल्क़ का जज़्बा और ज़िंदगी के सही मक़ासिद का शऊर पैदा करना भी है।

कुछ औलादें ऐसी होती हैं जो अपने माँ–बाप की आँखों की ठंडक और उनके सुकून का ज़रिया बन जाती हैं और कुछ औलादें ऐसी होती हैं जो अपने वालिदैन के लिए शर्मिंदगी और नदामत का बाइस होती हैं। अल्लाह तआला ने सूरह–ए–फ़ुरक़ान में अपने नेक बंदों का जहाँ तज़किरा किया, वहीं उनकी सिफ़ात–ए–हमीदा का तज़किरा फ़रमाते हुए उनकी इस दुआ को भी ज़िक्र फ़रमाया है:

رَبَّنَا هَبْ لَنَا مِنْ أَزْوَاجِنَا وَذُرِّيَّاتِنَا قُرَّةَ أَعْيُنٍ

"और जो यह दुआ करते रहते हैं कि ऐ हमारे रब! हमारी बीवियों और हमारी औलाद से हमको आँखों की ठंडक अता फ़रमा।"

दूसरी जगह ईमान वालों को साफ़ और वाज़ेह हुक्म दिया गया कि:

يَا أَيُّهَا الَّذِينَ آمَنُوا قُوا أَنْفُسَكُمْ وَأَهْلِيكُمْ نَارًا

"ऐ ईमान वालो! बचाओ अपने आप को और अपने घर वालों को (जहन्नम की) आग से।"

यह आयत वाज़ेह करती है कि वालिदैन की ज़िम्मेदारी सिर्फ़ औलाद की जिस्मानी ज़रूरतें पूरी करना नहीं, बल्कि उनकी दीनी व अख़्लाक़ी तरबियत का एहतिमाम करना भी है। रसूलुल्लाह (स0अ0व0) ने फ़रमाया:

ما نحل والد ولده من نحل أفضل من أدب حسن

"किसी बाप ने अपनी औलाद को अच्छे अदब व तरबियत से बढ़कर कोई बेहतर तोहफ़ा नहीं दिया।"

आज जिन हालात में हम ज़िंदगी गुज़ार रहे हैं, हमारी नौजवान नस्ल को बर्बादी के रास्ते पर लगाया जा रहा है, उनके ईमान व अकीदे को कमज़ोर किया जा रहा है, उन पर ज़र्ब लगाई जा रही है। मोबाइल फ़ोन घर–घर आम हो चुका है। स्मार्ट आलात की फ़राहमी और स्क्रीनों पर घंटों बच्चों का लगे रहना, इसने उनके बचपन को बर्बाद कर दिया है। जिस इस्लाम ने जिस्मानी कुव्वत का दर्स दिया, जिसने उन खेलों को पसंद किया जिनसे जिस्म–ए–इंसानी को ताक़त मिलती है, कसरत को पसंद किया, जिसने दौड़ को, तीरअंदाज़ी को, तैराकी को पसंदीदगी की निगाह से देखा, आज उसी इस्लाम के मानने वालों के अंदर सोशल मीडिया (इंस्टाग्राम, फ़ेसबुक और यूट्यूब) के ज़रिए सुस्ती और काहिली पैदा की जा रही है। उनके अंदर दीनी बेज़ारी पैदा हो रही है। यह डिजिटल आलात हमारे घरों का निज़ाम दरहम–बरहम कर रहे हैं।

हम अपने बेटों और बेटियों को मुख़्तलिफ़ शोबा–ए–हयात, जामिआत, कॉलेजों और ग़ैर–मुल्की तालीमी इदारों में ऐसे लोगों के हवाले कर देते हैं जो हमारे ईमान व अकीदे के लिए नुक़सानदेह साबित हो सकते हैं, मगर हम बेपरवाही और तज़बज़ुब की कैफ़ियत में ज़िंदगी गुज़ारते रहते हैं। हम यह भूल जाते हैं कि हमें अल्लाह तआला के सामने जवाबदेह होना है। हमसे हमारी ज़िम्मेदारियों के बारे में पूछा जाएगा और हमारी औलाद के मुताल्लिक़ भी सवाल होगा कि हमने उनकी तरबियत और उनके ईमान की हिफ़ाज़त के लिए क्या इक़दामात किए। वरना कल यही औलाद हमारे ख़िलाफ़ हुज्जत बनेगी और अल्लाह के सामने यह कहेगी:

وَ قَالُوْا رَبَّنَآ اِنَّآ اَطَعْنَا سَادَتَنَا وَ كُبَرَآءَنَا فَاَضَلُّوْنَا السَّبِيْلَا رَبَّنَآ اٰتِهِمْ ضِعْفَيْنِ مِنَ الْعَذَابِ وَ الْعَنْهُمْ لَعْنًا كَبِيْرًا

"और कहेंगे ऐ हमारे रब! हमने अपने सरदारों और अपने बड़ों की बात मानी तो उन्होंने हमें गुमराह किया। ऐ हमारे रब! उनको दोहरा अज़ाब दे और उन पर बड़ी फटकार बरसा।"

तब हमारे पास सिवाए अफ़सोस व हसरत के कुछ न बचेगा।

औलाद की तरबियत एक बड़ी ज़िम्मेदारी है और इस ज़िम्मेदारी को पूरा करने में हम नाकाम साबित हो रहे हैं। अपने बच्चों को हम वक़्त नहीं दे पाते, उनके साथ बैठकर उनके जज़्बात को समझने की कोशिश नहीं करते, उनसे मोहब्बत और ताल्लुक़ का इज़हार नहीं करते, उनके सवालात पर उनको झिड़कते हैं, डाँट देते हैं, उनकी हौसला शिकनी करते हैं, उनके एतिमाद को तोड़ देते हैं। इसका नतीजा फिर यह होता है कि औलाद हमसे दूर होती है। जब उनकी हमको ज़रूरत होगी तो हम कफ़–ए–अफ़सोस मलेंगे और अपने इस अमल पर पछताएँगे।

हज़रत मौलाना मुहम्मद राबे हसनी नदवी (रह0) अपने एक मज़मून में इसी की तरफ़ इशारा करते हुए लिखते हैं:

"वालिदैन के लिए ज़रूरी है कि वे बच्चों के सामने कोई ऐसी बात न करें जो उन्हें अच्छे अख़्लाक़ से दूर कर दे और जो हया के मनाफ़ी और इज़्ज़त व शराफ़त से अलग हो, क्योंकि बच्चे भी अपने वालिदैन की जानिब से सादिर होने वाले हर क़ौल व फ़ेल को, ख़्वाह अच्छे हों या बुरे, हर हाल में क़बूल कर लेते हैं और वालिदैन के लिए यह भी ज़रूरी है कि बुरी बातों से एहतिराज़ के पहलुओं को वाज़ेह करें और उनसे बाज़ रखने के लिए बच्चों के सामने सलफ़–ए–सालेहीन के मिसाली वाक़्यात पेश करें।"

एक जगह मज़ीद लिखते हैं:

"सबसे ज़्यादा अहमियत की हामिल और बच्चे पर सबसे ज़्यादा असर डालने वाली चीज़ घरेलू ज़िंदगी का दायरा–ए–अमल है, जिसमें वालिदैन उसकी देखभाल करते हैं और इसमें ख़ास तौर पर वालिदा का रोल बहुत ही अहम, गहरा और असरअंदाज़ होने वाला होता है। इस मरहले में बड़ी हद तक बच्चा एक गुँधी हुई मिट्टी की तरह होता है, जिसकी अख़्लाक़ी और ज़ेहनी कैफ़ियत को बहुत ही सहूलत के साथ किसी साँचे में ढालना मुमकिन होता है, बिल्कुल मिट्टी के उस बर्तन की तरह जिसे कुम्हार गीली मिट्टी से बनाता है। हुज़ूर (स0अ0व0) ने इसी जानिब इशारा करते हुए बच्चे की दीनी सूरत–ए–हाल के सिलसिले में फ़रमाया:

كل مولود يولد على الفطرة فأبواه يهودانه أو ينصـــرانه أويمجسانه

यानी बच्चे अस्ल फ़ितरत पर पैदा होते हैं (जो इस्लामी मिज़ाज के मुताबिक़ होते हैं), फिर उनके वालिदैन अगर यहूदी हुए तो यहूदी और नस्रानी हुए तो नस्रानी बना लेते हैं, अगर मजूसी हुए तो उन्हें मजूसी बना देते हैं। इसी बिना पर अहादीस में बच्चे की दीनी तरबियत की जानिब ख़ास तौर से तवज्जोह दिलाई गई है और दीन–ए–इस्लाम के सबसे अहम और वाजिब अम्र यानी नमाज़ के सिलसिले में सात साल की उम्र हो तो उसको समझाकर उसकी अदायगी के लिए और दस साल गुज़रने पर न करे तो सख़्ती और सज़ा इख़्तियार करने का हुक्म दिया गया है। और ज़ाहिर है कि बचपन में नमाज़ की अदायगी की आदत पड़ जाए तो ज़िंदगी भर उसकी आदत रहती है।"

लिहाज़ा हमारे लिए ज़रूरी है कि हम माज़ी की तरफ़ पलटें, अंबिया (अलैहिमुस्सलाम) हज़रात सहाबा (रज़ि0) की सीरत–ए–तय्यिबा का मुतालआ करें और अपने बच्चों को उनकी ज़िंदगी के बारे में बताएँ और उनके दौर से रहनुमाई हासिल करें। अपने बच्चों के अंदर उम्दा सिफ़ात, पसंदीदा आदतें और अख़्लाक़–ए–हसना पैदा करें और मकारिम–ए–अख़्लाक़ से उनके किरदार को आरास्ता करें। उनके अंदर बहादुरी के वे जवाहर पैदा करने की कोशिश करें जो हज़रात सहाबा (रज़ि0) में पाए जाते थे। ईमान से उनका रिश्ता मज़बूत करें, दिल व दिमाग़ में इस्लाम की हक़्क़ानियत को रासिख़ करें। कोशिश करें कि औलाद के सामने तहज़ीब का दामन थामे रहें और उनके सामने अपने अमल से, अपने क़ौल से इस्लामी तालीमात पेश करें।

क़ल्ब इन्सानी वजूद का सुल्तान

मौलाना मुहम्मद सलमान बिजनौरी नदवी

दिल इंसानी वजूद का वह असरारख़ाना है जहाँ जज़्बात जन्म लेते हैं और नीयतें परवान चढ़ती हैं। यह रूह का वह आईना है जिसमें ख़ालिक़–ए–कायनात की तजल्लीआत का अक्स नज़र आता है। जब यह आईना गुनाहों और ग़फ़लत के गुबार से धुँधला हो जाता है तो इंसान का पूरा वजूद तारीकी की लपेट में आ जाता है। बातिन की शादाबी और आख़िरत की सुर्ख़रूई के लिए दिल की इस्लाह से बढ़कर कोई अमल ज़रूरी नहीं। अल्लामा इक़बाल (अलैहिर्रहिमा) ने इसी हक़ीक़त को बड़े दिलनशीन अंदाज़ में बयान किया है:

दिल–ए–बीना भी कर ख़ुदा से तलब
आँख का नूर दिल का नूर नहीं

इस्लामी तालीमात में दिल को इंसानी जिस्म का हाकिम तस्लीम किया गया है। अगर सुल्तान आदिल और पाकीज़ा हो तो पूरी सल्तनत (जिस्म के आज़ा) में ख़ैर व बरकत का निज़ाम नाफ़िज़ होता है। नबी करीम (स0अ0व0) ने दिल की इसी मरकज़ियत को वाज़ेह करते हुए फ़रमाया:

أَلَا وَإِنَّ فِـى الْجَسَدِ مُضْغَةً إِذَا صَلَحَتْ صَلَحَ الْجَسَدُ كُلُّهُ وَإِذَا فَسَدَتْ فَسَدَتْ الْجَسَدُ كُلُّهُ، أَلَا وَہِیَ الْقَلْبُ

"ख़बरदार! जिस्म में गोश्त का एक टुकड़ा है, जब वह ठीक हो जाता है तो पूरा जिस्म ठीक हो जाता है और जब वह ख़राब हो जाता है तो पूरा जिस्म ख़राब हो जाता है। सुनो! वह दिल है।" (रवाहु–अल–बुख़ारी)

दिल की ज़मीन बड़ी ज़रख़ेज़ है। अगर इसमें ज़िक्र और फ़िक्र–ए–आख़िरत की शबनम गिरती रहे तो इससे इख़्लास व लिल्लाहियत, उख़ुव्वत व मोहब्बत, ईसार व हमदर्दी और सिला–ए–रहमी के फूल खिलते हैं। दिल का चमन शादाब नज़र आता है, लेकिन अगर इसे गुनाहों की तपती धूप में छोड़ दिया जाए तो यह ख़ुश्क व बंजर होकर बुग़्ज़ व अदावत, कीना व हसद और नफ़रत व तकब्बुर की झाड़ियाँ उगाने लगती है।

जिस तरह मौसम–ए–ख़िज़ाँ बाग़ के हुस्न को छीन लेता है, उसी तरह कुछ बातिनी बीमारियाँ दिल की रानाई को ख़त्म करके उसे संगलाख़ चट्टान बना देती हैं। कुरआन करीम ने दिलों की इसी कैफ़ियत को यूँ बयान किया है:

فِی قُلُوبِهِم مَّرَضٌ فَزَادَہُمُ اللَّهُ مَرَضًا

"उनके दिलों में बीमारी है, पस अल्लाह ने उनकी बीमारी को और बढ़ा दिया।" (सूरह बक़राः 10)

इंसान का दिल जब गुनाहों की वादी में क़दम रखता है तो उसके दिल पर स्याह नुक़्ता लग जाता है। धीरे–धीरे उसका दिल बिल्कुल स्याह हो जाता है। फिर उस पर किसी ख़ैर की बात का असर नहीं होता और जब गुनाह हद से बढ़ जाते हैं तो दिल पर एक ऐसा कुफ़्ल (ताला) लग जाता है जिसे कुरआन ने (ज़ंग) से ताबीर किया है:

كَلَّا بَلْ رَانَ عَلَىٰ قُلُوبِهِم مَّا كَانُوا يَكْسِبُونَ

"हरगिज़ नहीं, बात यह है कि उनके करतूतों की बिना पर उनके दिलों पर ज़ंग चढ़ गया है।"

दिल की क़द्र व मंज़िलत का अंदाज़ा हम इस तरह लगा सकते हैं कि आख़िरत में दिल ही का सिक्का चलेगा। यह दुनियावी ज़ाहिरी चमक–दमक, ओहदे और मंसब सब धरे रह जाएँगे। दुनिया में कितना नाम कमाया था या नहीं कमाया था, इसका कोई ज़िक्र ही नहीं होगा। रोज़–ए–क़यामत की अदालत में न तो दुनियावी जाह व जलाल काम आएगा और न ही माल व मता और दौलत का अंबार। वहाँ सिर्फ़ वह बंदा कामयाब होगा जो पाकीज़ा और साफ़ व शफ़्फ़ाफ़ दिल लेकर हाज़िर होगा। फ़रमान–ए–इलाही है:

يَوْمَ لَا يَنفَعُ مَالٌ وَلَا بَنُونَ إِلَّا مَنْ أَتَى اللَّهَ بِقَلْبٍ سَلِيمٍ

"जिस दिन न माल काम आएगा और न बेटे, सिवाय

उसके जो अल्लाह के पास क़ल्ब–ए–सलीम (पाकीज़ा दिल) लेकर आएगा।"

दिल का ज़ंग दूर करने और उसकी इस्लाह के लिए उम्मत के औलिया और मुफ़स्सिरीन ने निहायत गिराँक़द्र नुस्ख़े और अक़वाल बयान किए हैं। इमाम इब्ने क़य्यिम अल–जौज़िया (रह0) अपनी मशहूर तसनीफ़ "अल–वाबिलुस–सय्यिब" में फ़रमाते हैं:

"दिल का ज़ंग दो चीज़ों से चढ़ता है; ग़फ़लत और गुनाह और उसकी जिला (सफ़ाई) दो चीज़ों से होती है; इस्तिग़फ़ार और ज़िक्र–ए–इलाही।"

इमाम नववी ने "अल–हिल्या" के हवाले से नक़ल किया है कि जब इब्राहीम इब्न अदहम से दिल की सख़्ती के मुताल्लिक़ पूछा गया तो आपने पाँच इलाज बताए:

1– कुरआन मजीद को तदब्बुर (समझ) के साथ पढ़ना।

2– कम खाना (ख़ाली पेट रहना ताकि इबादात में दिल लगे।)

3– रात का क़ियाम (तहज्जुद की नमाज़।)

4– सहर के वक़्त अल्लाह के सामने गिड़गिड़ाना और इस्तिग़फ़ार करना।

5– नेक और सालेह लोगों की सोहबत इख़्तियार करना।

इमाम ग़ज़ाली (रह0) ने "इहया उलूमुद्दीन" में नक़ल किया है कि एक शख़्स ने हसन बसरी (रह0) से शिकायत की कि:

"मेरा दिल बेदार नहीं होता।"

तो आपने फ़रमाया:

"अपने दिल को गुनाहों के ज़हर से बचाओ क्योंकि गुनाह दिल को उसी तरह अंधा कर देते हैं जैसे धुआँ शीशे को सियाह कर देता है। अपने दिल का इलाज कसरत–ए–सुकूत (ख़ामोशी) और मुहासबा–ए–नफ़्स से करो।"

मौलाना जलालुद्दीन रूमी (रह0) ने दिल को पाक करने और बातिनी अनवार के ज़ुहूर की बुनियादी शर्त को अपनी "मसनवी मअनवी" में इस लाज़वाल शेर के ज़रिये वाज़ेह किया है:

आईना–ए–दिल चूँ शुद साफ़ व मुसफ़्फ़ा
नक़्श–हाए ग़ैब बीनी दर वये पैदा

"जब दिल का आईना साफ़ और पाकीज़ा हो जाता है तो उसमें ग़ैब के अनवार और रब्बानी हक़ाइक़ ज़ाहिर होने लगते हैं।"

जैसा कि शुरू में अर्ज़ किया गया कि दिल बादशाह है, इंसानी वजूद का सुल्तान है। अगर यह दुरुस्त है तो इसके मातहत तमाम आज़ा दुरुस्त और सही काम करते हैं। लिहाज़ा अगर दिल में ख़राबी पैदा होती है, वह ज़ंगआलूद होता है, वह सियाह हो जाता है तो उसकी सफ़ाई और उसको सैक़ल करने का भी तरीक़ा है। इसके लिए कसरत–ए–ज़िक्र, तौबा व इस्तिग़फ़ार किया जाए, नदामत के आँसू बहाए जाएँ। तौबा दिल के दाग़ों को ऐसे धो देती है जैसे बारान–ए–रहमत ज़मीन की धूल–मिट्टी को साफ़ कर देती है। कुरआन पाक में है:

أَلَا بِذِكْرِ اللَّهِ تَطْمَئِنُّ الْقُلُوبُ

"सुनो! अल्लाह के ज़िक्र ही से दिलों को इत्मीनान नसीब होता है।"

इसी के साथ नेक लोगों की सोहबत इख़्तियार की जाए, उनके पास वक़्त गुज़ारा जाए और जिस अल्लाह वाले की सोहबत में रहा जाए, उससे ताल्लुक़ और मोहब्बत भी हो, क्योंकि सोहबत का फ़ायदा मोहब्बत से होता है। अगर सोहबत–ए–सालेह के साथ ताल्लुक़ व मोहब्बत न हो तो वह फ़ायदा हासिल नहीं होगा।

इस्लाह–ए–क़ल्ब दरअसल खुद से खुदा तक पहुँचने का एक मुसलसल और खूबसूरत सफ़र है। यह अपने बातिन के निहाँख़ानों की सफ़ाई का नाम है। जब दिल की ज़मीन इश्क़–ए–रसूल (स0अ0व0), ख़ौफ़–ए–खुदा और बुज़ुर्गों के बताए हुए रास्तों पर चलकर महक उठती है तो इंसान का ज़ाहिर और बातिन यकजा होकर कमाल–ए–बंदगी की तस्वीर बन जाता है। हमें हर लम्हा अपने दिल की धड़कनों की निगरानी करनी चाहिए ताकि यह सिर्फ़ अपने हक़ीक़ी मालिक की फ़रमाँबरदारी में धड़कें।

ख़िरद ने कह भी दिया "ला इलाहा" तो क्या हासिल
दिल व निगाह मुसलमाँ नहीं तो कुछ भी नहीं

इल्हाद का तूफ़ान - असबाब व इलाज

मोहम्मद नज्मुद्दीन नदवी

अस्रे हाज़िर में मॉडर्निज़्म ने इल्हाद व दहरियत के फ़रोग़ व इशाअत में तालीम व दानिश के मैदान से भी राह पाई है, क्योंकि इसके ज़रिए से उसने पेश–क़दमी की और मग़रिबी सोच व विचार को आम करने में बहुत ज़्यादा मदद हासिल हुई। निज़ामे तालीम व तरबियत ने भी इस सिलसिले में बड़ा रोल अदा किया। निज़ामे तालीम में सानवियत आई, मुल्हिदाना फ़िक्र व ख़्याल और माद्दा–परस्ताना ज़हनियत बनाना और इस्लामी तालीम और इसके निज़ाम के हवाले से अक़्ल व ज़हन में यह बिठाना कि यह सिर्फ़ एक नज़रिया चीज़ है, इसका अमली पहलू से किसी क़िस्म का बाहमी रब्त व इर्तिबात नहीं, जबकि दानायाने फ़रंग ने इल्म व जुस्तुजू की राह से और अमली पहलू से जिन हक़ाइक़ का इदराक व इंकिशाफ़ किया, वे कुछ और ही हैं। एक तरफ़ यह है और दूसरी तरफ़ इसका शोर पूरी दुनिया में मचाया गया कि औरतों का साथ बड़ा ज़ुल्म और ज़्यादती हुई है और हो रही है। इसके लिए वसाइल और ज़राए अख़बार के ज़रिए यह बावर कराया गया कि औरत के हवाले से मग़रिब से उठने वाली यह आवाज़ और तहरीक़ वक़्त की आवाज़ और सही है। फिर क्या हुआ, वह दुनिया के सामने है कि आज़ादी–ए–निस्वां की तहरीक़ और प्रोपेगंडा मुहिम ने हुस्न की देवी और पापा की परी का अंजाम दिखाया है। मग़रिब और इसकी तहज़ीब ने शमा–ए–महफ़िल और शहवत की निशानी बनाकर इबरत व मौअज़त का सामान और बे–बसी का उनवान बना दिया, और जब चिराग़–ख़ाना को शमा–ए–महफ़िल और सब्हा की ज़ीनत बन जाए, तो इसमें शुबह नहीं रह जाता कि हिरनी करदनी बन कर रहती है और हर बे–हयाई इज़्ज़त में तब्दील हो जाती है और हर मुहाल मुमकिन होकर रहता है। मग़रिबी तहज़ीब सारी दुनिया में आज मुसल्लत है। इसके पैदा करदा तमाम जराइम के अदाद व शुमार पर अगर सिर्फ़ एक दिन की ख़बरों के लिए एक किताब भी नाकाफ़ी हो, तो मशरिक़ी व मग़रिबी दुनिया का हर अख़बार रोज़ाना ऐसे वाक़्यात की ख़बर देता है कि बरज़ा व रग़बत ज़िनाकारी की छूट के बावजूद ब–जब्र व इकराह ज़्यादती व इस्मत–दरी के वाक़्यात में इज़ाफ़ा हो रहा है, और यह नहीं बल्कि इस आज़ाद खित्ते में अख़बार और सोशल मीडिया के तवस्सुत से बहुत से वाक़्यात सामने आते हैं कि अभी गुज़श्ता महीने राजस्थान के एक इलाक़े में किसी पाकीज़ा दोशीज़े की इस्मत–दरी का दर्दनाक हादसा पेश आया। इलावा अज़ीं कभी अख़बार में ऐसी सुर्ख़ी भी नज़र से गुज़रती है कि औरतों ने मर्दों के साथ ज़नाकारी की। वाक़्या यह कि यह सब इसी आज़ादी–ए–निस्वां की बरकत है, और आज आइली ज़िंदगी अजीरन बन चुकी है। एक मुस्तशरिक़ मुफ़क्किर फ़िशर की ज़बान में हम यह कह सकते हैं। उन्होंने एक इंटरव्यू में कहा था कि मैं इस बात का सराहत के साथ इक़रार करता हूँ कि हमारे यहाँ ग़ैरेलू ज़िंदगी अपने पूरे वसीअ मफ़हूम के साथ अजीरन बन चुकी है और हम इसकी वजह से बहुत से नुक़सानात भी भुगत रहे हैं, लेकिन दरअसल यह इल्मी तरक़्क़ी का टैक्स है जो हम को अदा करना पड़ता है। दानिश–आबाद यूरोप व अमेरिका के आक़िलों और हकीमों की तहक़ीक़ और इंकिशाफ़ ने भी अब यह साबित कर दिया है कि मग़रिब में ख़ानदानी निज़ाम टूट कर बिखर गया है। साबिक़ सदर सोवियत यूनियन मिख़ाइल गोर्बाचेव (Mikhail Gorbachev) ने एक किताब (Perestroika - The New Thinking for Our Country and the World) लिखी, जो पूरी दुनिया में मशहूर है। इस किताब में उन्होंने एक बाब 'औरत' पर लिखा है, जिसमें वे यह लिखने पर मजबूर हैं:

"हमारी मग़रिब की सोसाइटी में औरत को घर से बाहर निकाल दिया गया और इस को घर से बाहर निकालने के नतीजे में बेशक़ हम ने कुछ माशी फ़वाइद हासिल किए और पैदावार में कुछ इज़ाफ़ा हुआ, इस लिए कि मर्द भी काम कर रहे हैं और औरतें भी काम कर रही हैं। लेकिन पैदावार के ज़्यादा हो जाने के बावजूद इसका लाज़मी नतीजा यह हुआ कि हमारा फ़ैमली सिस्टम तबाह हो गया और इस फ़ैमली सिस्टम के तबाह हो जाने के नतीजे में हमें जो नुक़सानात उठाने पड़े हैं, वे नुक़सानात इन फ़वाइद से ज़्यादा हैं, जो प्रोडक्शन (production) के इज़ाफ़े के नतीजे में हमें हासिल हुए। लिहाज़ा मैं अपने मुल्क में 'पेरेस्त्रोइका' (Perestroika) के नाम से एक तहरीक़ शुरू कर रहा हूँ। इस में मेरा एक बहुत ही बुनियादी मक़सद यह है कि वह औरत जो घर से बाहर निकल चुकी है, इस को वापस घर में कैसे लाया जाए, इस के तरीक़े सोचने पड़ेंगे, वरना जिस तरह हमारा फ़ैमली सिस्टम तबाह हो चुका है, उसी तरह हमारी क़ौम तबाह हो जाएगी।" (इस्लाही खुत्बातः 1/144)

यही वह असास है कि डॉक्टर मुहम्मद इक़बाल कहने पर मजबूर हैं। उन्होंने एक शेर में इस पर तब्सरा किया, वह इंतिहाई जामिअ हैः

बे–कारी व मय–ख़्वारी व उरयानी व इफ़लास
क्या कम है फ़रंगी मदनियत के फ़तूहात

यह सब कुछ आज़ादी–ए–निस्वां और हुर्रियत–ए–फ़िक्र व अमल के नतीजे में हुआ। इसके सद्दे बाब और इस ख़ानदानी बिखरते निज़ाम और टूटते रिश्ते से और आज़ादी–ए–निस्वां से फ़रेब–कुन इलहादी नारों और फ़िक्रों से निकलने और इन से नजात हासिल करने का वाहिद रास्ता और इस का अकेला व मुनफ़रिद हल सालिह़ व मुतवाज़िन और पाकीज़ा सोसाइटी की तशकील व तामीर है। इस के लिए इस्लाम ने एक मुस्तक़िल और पायेदार ख़ानदानी निज़ाम बनाया है और औरत के मक़ाम व मर्तबे की तअयीन की है। हैरान व परेशान और मुसीबत–ज़दा ज़िंदगी से सुकून व चैन की ज़िंदगी की तरफ़ वापसी के लिए यह जानना और अमल करना ज़रूरी है कि इस्लाम ने औरत को क्या मक़ाम दिया और इस के लिए जो हुदूद और दायरा–ए–कार क़ाइम किए गए हैं, वे मअलूम हों और दीन को हर शोबा–ए–ज़िंदगी में ज़िंदगी दी जाए। साथ ही यह भी ख़्याल रखा जाए कि सक़ाफ़त के मैदान में भी इस का ख़्याल रखना नागुज़ीर होगा। इसी तरह से हर मैदान में इस की फ़िक्र ज़रूरी होगी कि इस्लामी तालीमात से टकराव न हो और क़ानूने इलाही और हुदूद के दायरे से आज़ादी व बे–राह रवी न पाई जाए।

हवस की अमीरी और हवस की वज़ीरी के इस दौर में ज़रूरी है कि सेहतमंद माहौल पैदा किया जाए, ग़ैरों से मरऊबियत का मर्ज़ ख़त्म किया जाए और मुसलमानों की बे–अमली को अमल में ढाला जाए। इस के लिए घर में माहौल बनाया जाए, स्कूल व मदरसा के पैमाने पर मेहनत की जाए और ज़राए अख़बार का बेहतर से बेहतर इस्तेमाल इस की तशहीर के लिए किया जाए, और मुज़िर ज़राए अख़बार से घर व माहौल को बचाना और नफ़अ व ज़रर से आगाह करना और इस्लाम की साफ़–सुथरी तालीमात से वाक़िफ़ कराना, इस्लामी निज़ामे ज़िंदगी के इख़्तियार करने की बेहतरी को नुमायाँ किया जाए और बेहतर इज्तिमाई निज़ाम का क़ियाम हो। इस के लिए नुस्ख़ा–ए–तशफ़ी–बख़्श वह है जिसे इस्लाम ने पेश करके चौदह सौ साल पहले मुसलमानों ने इंसानी दुनिया को दिखाया और बताया कि आफ़ियत व सुकून और हर कामयाबी उसी तरीक़े व नुस्ख़े के इख़्तियार करने में मुज़मर है। मग़रिब की हर तरह की रूहानी, अख़्लाक़ी और क़ानूनी व मज़हबी अफ़लास की गुलामी से निकल कर नूरे हिदायत की तरफ़ आने में कामयाबी है, ताकि नूर के इस मशाल की रौशनी से रौशनी हासिल करके इंसानी दुनिया के जिस्म पर ही हुकूमरानी न हो, बल्कि इस के क़ल्ब व ज़मीर की गहराइयों पर इस मशाल की रौशनी ताबाँ व रौशन करे।

अम्बिया (अलैहिस्सलाम) की मुख़ालिफ़त की एक बड़ी वजह

अबुल हसन अली हसनी नदवी

इस दुनिया में सब से बुलंद तरीन मक़ाम जिस जमाअत को हासिल हुआ वह अंबिया (अलैहिमुस्सलाम) की जमाअत है। यह वह जमाअत है जिस का इंतिख़ाब अल्लाह रब्बुल इ़ज़्ज़त की जानिब से दुनिया–ए–इंसानियत की हिदायत व रहनुमाई के लिए हुआ। इस जमाअत ने मुख़्तलिफ़ अदवार में अपनी अपनी क़ौम को घाटा–टोप तारीकियों से निकाल कर अनवार–ए–कुदसी से रौशनास कराने की इंतिहाक़ कोशिश की है, लेकिन यह भी एक तल्ख़ हक़ीक़त है कि इन मुबारक शख़्सियात के मुकम्मल इख़्लास, क़ौम के तअल्लुक़ ख़ैर–ख़्वाहाना जज़्बात और बग़ैर किसी इवज़ के मुक़दूर भर जद्दोजहद के बावजूद क़ौम की जानिब से इन्हें शदीद इंकार का सामना करना पड़ा। इन के इंकार के मुख़्तलिफ़ असबाब का जाइज़ा लेने पर दर–परदे एक चीज़ कार–फ़रमा नज़र आती है और वह इन का तकब्बुर है।

हज़रत नूह (अलैहिस्सलाम) जो अपनी क़ौम को साढ़े नौ सौ (950) साल तक दावत देते रहे, उन्होंने जिस तरह अपनी क़ौम को पेशक़शें की थीं, इन को ठुकराने का बुनियादी सबब तकब्बुर के सिवा कुछ नहीं नज़र आता। उन्होंने अपनी क़ौम से फ़रमाया था कि "ऐ मेरी क़ौम! अपने परवरदिगार की बारगाह में तौबा व इस्तिग़फ़ार करो, अपने गुनाहों पर नादिम हो जाओ। तुम्हारा रब तुम पर मूसला–धार बारिशें बरसाएगा, तुम्हारे माल व दौलत और आल व औलाद में खूब फ़रावानी अता फ़रमाएगा। मज़ीद तुम्हारे लिए बाग़ात के बाग़ात लगा दिए जाएँगे और नहरें जारी कर दी जाएँगी।"

यह ऐसी पेशक़श थी कि क़ौम के लिए इस में फ़ायदा के सिवा कुछ न था। अगर इस्तिग़फ़ार के नतीजे में इतनी सारी नेमतें यकलख़्त मिल जातीं और यक़ीनन मिल जातीं, तो ज़िंदगी गुल व गुलज़ार हो जाती, और अगर यह पेशीन–गोई सच न होती, तब तो इन को हज़रत नूह (अलैहिस्सलाम) की तकज़ीब और (मआज़अल्लाह) इन की कज़्ब–बयानी साबित करने का सुनहरा मौक़ा हाथ आता, लेकिन इन तमाम चीज़ों के बावजूद क़ौम ने इस्तिग़फ़ार नहीं किया। इन के लिए यह बात बड़ी गिरां–बार थी कि यह ख़ैर हमें नूह (अलैहिस्सलाम) के ज़रिए हासिल हो। इन का यह तर्ज़े अमल वाज़िह तौर से इन के तकब्बुर की निशान–दही करता है। कुरआने करीम ने खुद हज़रत नूह (अलैहिस्सलाम) की ज़बानी इन के तकब्बुर की गवाही दी है। सूरए नूह में है:

وَإِنِّي كُلَّمَا دَعَوْتُهُمْ لِتَغْفِرَ لَهُمْ جَعَلُوا أَصَابِعَهُمْ فِي آذَانِهِمْ وَاسْتَغْشَوْا ثِيَابَهُمْ وَأَصَرُّوا وَاسْتَكْبَرُوا اسْتِكْبَارًا

"और जब–जब मैंने इनको बुलाया ताकि तू इन को मआफ़ करदे, तो इन्होंने अपने कानों में उंगलियाँ दे लीं और अपने कपड़े लपेट लिए और उड़ गए और इन्होंने बड़ी अकड़ दिखाई।"

तक़रीबन यही सूरते हाल क़ौमे आद की थी। हज़रत हूद (अलैहिस्सलाम) ने भी इन को इसी तरह की पेशक़श की थी, बल्कि इस से बढ़ कर जिस ताक़त व कुव्वत पर इन्हें बड़ा नाज़ था, उस ताक़त में अल्लाह की तरफ़ से मज़ीद इज़ाफ़े की ज़मानत दी गई, लेकिन इन गुमंद के मारों को अल्लाह की यह करम–फ़रमाइयाँ रास न आईं और इन का तकब्बुर इन्हें ले डूबा। सूरए हूद में है:

وَ يَقَوْمِ اسْتَغْفِرُوا رَبَّكُمْ ثُمَّ تُوبُوْا إِلَيْهِ يُرْسِلِ السَّمَـــــاءَ عَلَيْكُمْ مِّدْرَارًا وَيَزِدْكُمْ قُوَّةً إِلَي قُوتِكُمْ وَ لا تَتَوَلَّوْا مُجْرِمِينَ *قَالُوا يَهُـــــودُ مَا جِئْتَنَا بِبَيِّنَةٍ وَ مَا نَحْنُ بِتَارِكِيْ آلِهَتِنَا عَنْ قَوْلِكَ وَ مَا نَحْنُ لَكَ بِمُؤْمِنِينَ

"और ऐ मेरी क़ौम के लोगो! अपने रब से मग़फ़िरत तलब करो, फिर उसी की तरफ़ रुजूअ करो। वह ऊपर से तुम पर मूसलाधार बारिश बरसाएगा और तुम्हारी ताक़त में और ताक़त का इज़ाफ़ा कर देगा, और मुजरिम होकर मत फिरो। वह बोलेः ऐ हूद! तुम कोई खुली

निशानी ले कर तो आए नहीं, और हम सिर्फ़ तुम्हारे कहने से अपने मअबूदों को छोड़ने वाले नहीं और न ही हम तुम पर यक़ीन करने वाले हैं।"

हज़रत लूत (अलैहिस्सलाम) ने जब अपनी क़ौम को इन ग़लाज़तों और बदकारियों से, जिन में वह सर–तापा ग़र्क़ थे, निकाल कर इन के क़ल्ब व दिमाग़ को तहारत व पाकीज़गी के ज़ेवर से आरास्ता व पैरास्ता करने की कोशिश की, तो वह इन को मुल्क–बदर करने के दरपे हो गए और तन्ज़ व तशनीअ का वह तर्ज़ अपनाया जो वाज़िह़ तौर से इन के तकब्बुर व अनानियत का शाहिद है। इस का ज़िक्र क़ुरआने मजीद सूरए आराफ़ में यूँ करता है:

وَمَا كَانَ جَوَابَ قَوْمِهِ إِلَّا أَن قَالُوا أَخْرِجُوبُم مِّن قَرْيَتِكُمْ إِنَّهُمْ أُنَاسٌ يَتَطَهَّرُونَ

"इन की क़ौम ने जवाब में सिर्फ़ यह कहा कि इन को बस्ती से निकाल बाहर करो, यह वह लोग हैं जो बड़े पारसा बनते हैं।"

यही तकब्बुर था जिस से बनी इस्राईल में मबऊस तमाम अंबिया (अलैहिमुस्सलाम) को अपनी अपनी क़ौमों की बद–तमीज़ियों व बद–उनवानियों से दोचार होना पड़ा और बाज़ों का इन्हीं की क़ौम के हाथों मज़लूमाना शहादत का शर्मनाक वाक़या पेश आया। सूरए बक़रा की आयत इस बात की गवाही देती है:

أَفَكُلَّمَا جَاءَكُمْ رَسُولٌ بِمَا لاَ تَهْوَى أَنفُسُكُمُ اسْتَكْبَرْتُمْ فَفَرِيقاً كَذَّبْتُمْ وَفَرِيقاً تَقْتُلُونَ

"क्या ऐसा नहीं हुआ कि जब भी कोई रसूल तुम्हारे पास ऐसी चीज़ों के साथ आया जो तुम्हारी मन–चाही न थीं, तो तुम अकड़ गए, तो कुछ (नबियों) को तुम ने झुटला दिया और कुछ को क़त्ल करने पर लग गए।"

इसी तरह हुज़ूर अकरम (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) के मुख़ालिफ़ीन में भी नुक़्ता–ए–इश्तिराक़ यही तकब्बुर था। मक्की दौर में सरदाराने मक्का को अपनी सरदारी व क़यादत का बड़ा ग़रूर था और हर एक अपने आप को इस बात का हक़दार समझता था कि यह किताबे हिदायत हम पर नाज़िल होती, हम को नुबुव्वत के लिए मुंतख़ब किया जाता और हमारे पास फ़रिश्ता आता। सूरह मुदस्सिर में अल्लाह तआला ने गवाही दी है:

بَلْ يُرِيدُ كُلُّ امْرِئٍ مِّنْهُمْ أَن يُؤْتَى صُحُفًا مُنَشَّرَةً

"अल्बत्ता इन में से हर एक यह चाहता है कि उस को खुले सहीफ़े दे दिए जाएँ।"

इसी तरह एक दूसरी आयत में इन के ऐतराज़ का ज़िक्र है कि मक्का या ताइफ़ में से किसी अज़ीमुल–मरतबत आदमी को नबी क्यों नहीं बनाया गया, लेकिन इस में भी पस–परदह इन का मक़सद यही नज़र आता है कि हम को क्यों नुबुव्वत न मिली?! सूरह ज़ुख़रुफ़ में है:

وَقَالُوْا لَوْلاَ نُزِّلَ بَذَا الْقُرْآنُ عَلَي رَجُلٍ مِّنَ الْقَرْيَتَيْنِ عَظِيمٍ

"और वह बोले कि यह क़ुरआन दोनों बस्तियों में से किसी बड़े आदमी पर क्यों न उतरा।"

और सूरह साद में अल्लाह रब्बुल इज़्ज़त इन के तकब्बुर का वज़ाहत से ज़िक्र करता है:

بَلِ الَّذِينَ كَفَرُوا فِي عِزَّةٍ وَشِقَاقٍ

"बात यह है कि इंकार करने वाले ग़रूर और मुख़ालिफ़त में लगे हैं।"

इसी तरह मदनी दौर में रईसुल–मुनाफ़िक़ीन अब्दुल्लाह बिन उबई की दसीसा–कारियाँ, जंगे ओहद के मौक़े पर इस का यह कह कर आधे रास्ते से लौट जाना कि मेरी राय नहीं मानी गई, और ग़ज़वा–ए–बनी मुस्तलिक़ के मौक़े पर इस का और इस के टोले का यह जुमला कि हम जैसे बइज़्ज़त अफ़राद कमज़ोर व नादार मुसलमानों को मदीने से निकाल देंगे, जिस का ज़िक्र सूरए मुनाफ़िक़ून में इस तरह है:

يَقُولُونَ لَئِن رَّجَعْنَا إِلَى الْمَدِينَةِ لَيُخْرِجَنَّ الْأَعَزُّ مِنْهَا الْأَذَلَّ وَلِلَّهِ الْعِزَّةُ وَلِرَسُولِهِ وَلِلْمُؤْمِنِينَ وَلَكِنَّ الْمُنَافِقِينَ لا يَعْلَمُونَ

"वह कहते हैं कि अगर हम मदीना लौटें, तो वहाँ जो इज़्ज़त वाला है, वह ज़िल्लत वाले को निकाल बाहर करदेगा। हालाँकि इज़्ज़त सब की सब अल्लाह के लिए है और उस के रसूल के लिए है और ईमान वालों के लिए है, अल्बत्तह मुनाफ़िक़ जानते ही नहीं।"

और फिर यहूदे मदीना का हुज़ूर (सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम) को अपने बेटों की तरह पहचानने के बावजूद आप (सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम) का इंकार करना, बल्कि आप के ख़िलाफ़ ख़ुफ़िया तदाबीर में पेश–पेश रहना, यहाँ तक कि आप (सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम) को (मआज़अल्लाह) शहीद करने की कोशिश करना, इन तमाम बातों में जो चीज़ सब से ज़्यादा सरगर्म नज़र आती है, वह वही इन का हसद और तकब्बुर है, जो पिछली क़ौमों से इन्हें विरसा में मिला था।

दाई-ए-इस्लाम के उपदेश

अदब की अहमियत:

फ़रमाया: وَمَنْ يُعَظِّمْ شَعَائِرَ اللّٰهِ فَإِنَّهَا مِنْ تَقْوَى الْقُلُوْبِ (और जिसने शआइरुल्लाह की ताज़ीम की तो यक़ीनन यह दिल के तक़्वा की बात है) शआइरुल्लाह की ताज़ीम दिल के अदब की बात है, वाक़्या यह है कि सारी चीज़ें और कमालात-ए-अदब से हासिल होते हैं, इल्म व अक़्ल से नहीं, इसलिए अदब का होना ज़रूरी है।"

सही इल्म:

फ़रमाया: "इल्म का हर ज़रिया नाक़िस है सिवाय वही के और वही अंबिया पर आती है। मालूम हुआ कि अस्ल और सहीह इल्म के शारेअ अंबिया-ए-किराम (अलैहिमुस्सलाम) हैं। इसलिए हर इल्हाम, हर कश्फ़ और हर मनाम जब तक शरीअत के नूर से मुस्तनीर न हो उसकी कोई हक़ीक़त नहीं।"

सबसे बड़ा फ़रेब:

फ़रमाया: "सबसे ज़्यादा फ़रेब और झूठ यह है कि आदमी अपनी आँख को वह दिखाए जो उसने देखा ही नहीं यानी झूठा ख़्वाब बयान करे।"

अल्लाह से तअल्लुक़ की ज़रुरत:

फ़रमाया: "हज़रत थानवी (रह०) का कहना है कि किसी दर्जे में भी ख़िदमत-ए-दीन का काम करने के लिए सबसे पहले अल्लाह से तअल्लुक़ क़ायम करना शर्त है फिर अल्लाह तआला जिस काम में मुनासिब समझेगा लगा देगा। आदमी अगर अल्लाह से तअल्लुक़ के बग़ैर काम शुरू कर देता है तो फिर वह ऐसी सूरत में भटकेगा और सहीह तरीक़े से काम न कर सकेगा। इसीलिए हुसूल-ए-इल्म के बाद ज़रूरी है कि किसी दर्जे में अल्लाह से तअल्लुक़ क़ायम किया जाए और ख़ुदा का ख़ौफ़ दिल में हो।"

ज़िक्र की अहमियत:

फ़रमाया: "اِذَا مَسَّهُمْ طَائِفٌ مِنَ الشَّيْطَانِ تَذَكَّرُوْا (जब उनको कोई ख़तरा शैतान की तरफ़ से आ जाता है तो वह याद में लग जाते हैं)

मालूम हुआ जब आदमी पर शैतानी हमला हो तो ज़िक्र करना चाहिए, इससे क़ल्ब का तज़किया होगा, हक़ीक़त में सहीह राह ज़ाहिरी आँख से नहीं दिल की आँख से नज़र आती है और दिल के मुसफ़्फ़ा होने के लिए ज़िक्र शर्त है।"

तौफ़ीक़-ए-इलाही:

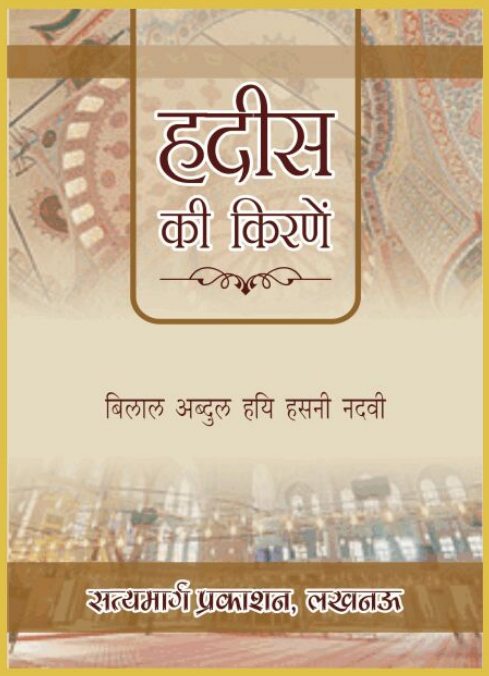
फ़रमाया: "अल्लाह की मर्ज़ी, उसकी तौफ़ीक़ और उसके इंतिख़ाब से सब काम होता है, वह जिसको चाहें जैसे नवाज़ें, कोई कुछ कहने का हक़दार तो क्या, सोच भी नहीं सकता, इसलिए हर आदमी सिर्फ़ अपने रब ही से माँगे और उसी का नाम लेता रहे, इंशाअल्लाह काम हो जाएगा।"

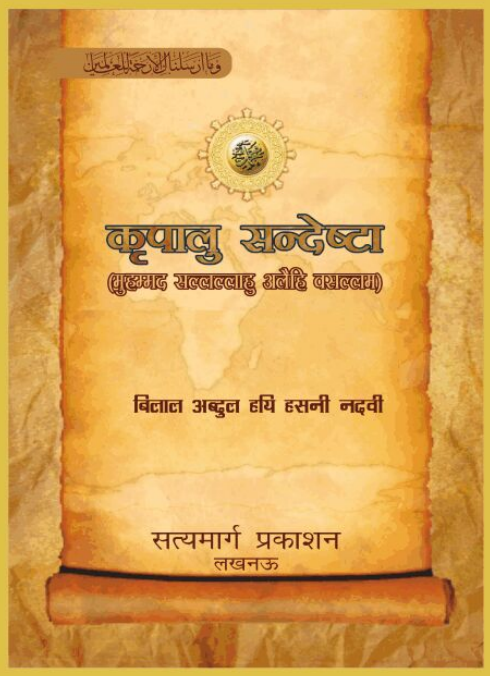
ज़ब्त-ओ-पेशकश: मुहम्मद अज़ीमुद्दीन नदवी

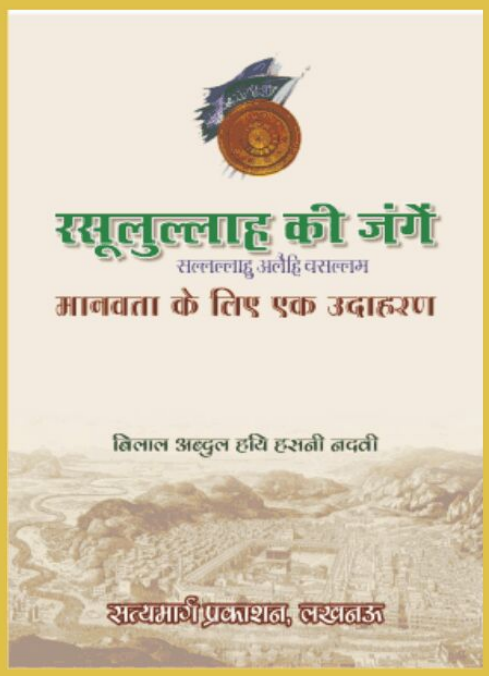
R.N.I. No.
UPHIN/2009/30527

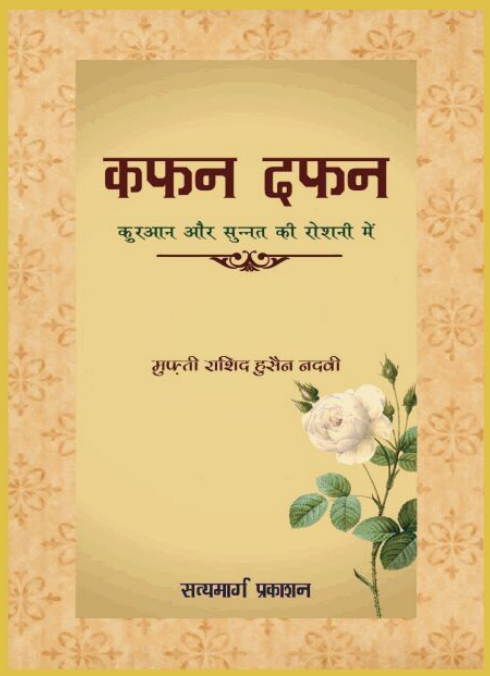
Monthly
ARAFAT KIRAN
Raebareli

Issue: 11 ❁ November 2026 ❁ Volume: 18









Editor: Bilal Abdul Hai Hasani Nadwi
MARKAZUL IMAM ABIL HASAN AL-NADWI
Dare Arafat, Takiya Kalan, Raebareli, U.P.
Mobile:9565271812
E-Mail: markazulimam@gmail.com
www.abulhasanalinadwi.org

Printed & Published by: Mohammad Hasan Nadwi
On Behalf of: Markazul Imam Abil Hasan Al-Nadwi
Printed at S.A. Offset Printers, Masjid ke peeche,Phatak
Abdullah Khan, Sabzi Mandi, Station Road, Raebareli, U.P.